शिक्षा मनोविज्ञान (II Paper)

II Internal Exam. Portion

शिक्षा मनोविज्ञान - शिक्षा तथा शिक्षण विषय के अंतर्गत अध्ययन कराया जाने वाला व्यावहारिक विज्ञान है। शिक्षा आदिकाल से चली आ रही मानव व्यवहार को परिमार्जित करनेवाली प्रक्रिया रही है। शिक्षा ने मनुष्य को सामाजिक मान्यताओं के अनुसार विकसित करने में विशेष योग दिया है। शिक्षा मानव व्यवहार के परिमार्जन का सशक्त अंक है। अतः मनोविज्ञान से इसका आदि संबन्ध रहा है।

शिक्षा मनोविज्ञान को समझने के लिए हमें पहले ~~शिक्ष~~ शिक्षा तथा मनोविज्ञान शब्दों को समझना होगा।

शिक्षा का आधुनिक अर्थ

शिक्षा शब्द को लेकर ~~[illegible]~~ आज भी एकमतता नहीं है। स्कूल में पठन पाठन को शिक्षा का वास्तविक अर्थ माना जाता है। वास्तव में ऐसा ~~कि~~ नहीं है। महात्मा गाँधी ने शिक्षा को सर्वांगीण विकास (शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक ~~विकास~~) की प्रक्रिया माना है।

शिक्षा शब्द संस्कृत की शिक्ष् धातु से बना है, इसका अर्थ है सीखना। ~~[illegible]~~ सीखने की प्रक्रिया शिक्षक, छात्र तथा पाठ्यक्रम द्वारा संचालित होती है। अंग्रेजी भाषा का शब्द एजुकेशन लैटिन भाषा के एडूकेयर से बना है। जिसका अर्थ है बाहर लाना।

व्यक्ति अपने जन्म के समय असहाय होता है। और दूसरों की सहायता से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, वैसे-वैसे वह उनको पूरा करना और अपने वातावरण से अनुकूलन करना सीखता है। ~~[illegible]~~ इन कार्यों में शिक्षा उसे विशेष योग देती है। शिक्षा न केवल उसे अपने वातावरण से अनुकूलन

2 करने में सहायता देती है, वरन उसके व्यवहार में ऐसे वांछनीय परिवर्तन भी करती है कि वह अपना और अपने समाज का कल्याण करने में सफल होता है। डॉ. राधाकृष्णन लिखा है "शिक्षा को मनुष्य और समाज का निर्माण करना चाहिए। इस कार्य को ये बिना शिक्षा अपूर्ण है।"

शिक्षा की आधुनिक परिभाषाएँ

✓ ड्रेसन :- "आधुनिक शिक्षा का संबंध व्यक्ती और समाज दोनों के कल्याण से है।"

डम्विल :- "अपने व्यापक अर्थ में शिक्षा में वे सब प्रभाव सम्मिलित रहते हैं, जो व्यक्ती पर उसके जन्म से लेकर मृत्यू तक पड़ते हैं।"

✓ महात्मा गांधी :- "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक एवं मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क, एवं आत्मा के सर्वोत्तम अंश की अभिव्यक्ती है।"

मनोविज्ञान का विकास

रेबर्न का मत है कि "मनोविज्ञान ने अरस्तू की समय में दर्शन शास्त्र के अंग के रूप में अपना जीवन आरंभ किया। उस समय से लेकर सैकड़ों वर्षों तक इसी शास्त्र के अंग के रूप में किया गया। रेबर्न ने लिखा है "आधुनिक काल में एक परिवर्तन हुआ है। मनोवैज्ञानिकों ने धीरे धीरे अपने विज्ञान को दर्शन शास्त्र से अलग (पृथक) कर लिया है।"

मनोविज्ञान के अर्थ में क्रमशः परिवर्तन

मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र से ~~कैसे~~ किस प्रकार ~~पृथक~~ पृथक हुआ

3 और इसके अर्थ में किस प्रकार परिवर्तन हुआ, इसका वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा रहा है

(i) आत्मा का विज्ञान

गैरिट के अनुसार सॅकोलजी शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के दो शब्दों से हुई है - साइकी जिसका अर्थ है आत्मा और लोगास जिसका अर्थ है अध्ययन (Study)। इस प्रकार प्राचीन काल में साइकोलजी या मनोविज्ञान का अर्थ था Study of Soul। अर्थात आत्मा का अध्ययन। इसलिए इसको उस काल में आत्मा का विज्ञान माना जाता है।

अनेक यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान माना। इन दार्शनिकों में उल्लेखनीय है प्लेटो, अरिस्टोटल। आत्मा क्या है एवं उसका रंग, रूप, और आकार कैसा है? आत्मा की व्याख्या, उसके अस्तित्व एवं प्रामाणिकता का उत्तर न दे पाने के कारण सोलहवीं शताब्दी में मनोविज्ञान का यह अर्थ अस्वीकार कर दिया गया।

(2) मस्तिष्क का विज्ञान

मध्ययुग के दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को मन या मस्तिष्क का विज्ञान बताया। दूसरे शब्दों में उन्होंने विशेष रूप से 'इटली' के दार्शनिक Pomponazzi ने मनोविज्ञान को मस्तिष्क का अध्ययन करनेवाला विज्ञान कहा। इसका मुख्य कारण यह था कि आत्मा के मानसिक और आध्यात्मिक पहलू अध्ययन के पृथक विषय हो गये थे। पर कोई भी दार्शनिक मस्तिष्क की प्रकृति और स्वरूप का निश्चित विवेचन नहीं कर सका। मन शब्द के विषय में अनेक मतभेद आ गये। अतः यह परिभाषा भी -

4 अस्वीकार की गयी।

(3) चेतना का विज्ञान

सोलहवीं शताब्दी में विलियम William James, James Sully, आदि विद्वानों ने मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान बताया। उन्होंने कहा कि मनोविज्ञान मनुष्य की चेतन क्रियाओं का अध्ययन करता है। पर वे चेतना शब्द के अर्थ के संबंध में एकमत न हो सके। दूसरे चेतन मन के अलावा अचेतन मन और अर्ध चेतन मन भी होते, जो मनुष्य की क्रियाओं को प्रभावित करते। परिणामतः मनोविज्ञान के यह अर्थ सीमित होने के कारण सर्वमान्य न हो सका।

(4) व्यवहार का विज्ञान

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में मनोविज्ञान के अनेक अर्थ बताये गये, जिनमें सबसे अधिक मान्यता इस अर्थ को दी गयी कि " मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इस शताब्दी में मनोविज्ञान को व्यवहार का निश्चित विज्ञान माना जाता है। इस संबंध में कुछ प्रमुख लेखकों के विचारों को निम्नांकित पंक्तियों में दर्शाया जा रहा है।

Watson:- " मनोविज्ञान व्यवहार का निश्चित विज्ञान है"।

वुडवर्थ - " मनोविज्ञान वातावरण के संबंध में व्यक्ति की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

यदि हम उक्त लेखकों के विचारों का विश्लेषण करें तो हमें निश्चित विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान के संबंध में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं।

(1) मनोविज्ञान एक विधायक विज्ञान है।

5 (6) मनोविज्ञान भौतिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के वातावरण का अध्ययन करता है।

(7) मनोविज्ञान न केवल व्यक्ति के व्यवहार का, अपितु पशु व्यवहार का भी अध्ययन करता है।

मनोविज्ञान की परिभाषाएँ

स्किनर :- "मनोविज्ञान व्यवहार और अनुभव का विज्ञान है।"

मन :- "आधुनिक मनोविज्ञान का संबंध, व्यवहार की वैज्ञानिक खोज से है।"

क्रो व क्रो :- "मनोविज्ञान मानव व्यवहार और मानव संबंधों का अध्ययन है।"

वुडवर्थ :- "मनोविज्ञान वातावरण के संबंध में व्यक्तियों की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान का योगदान

मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं। मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में वैचारिक एवं व्यावहारिक परिवर्तन किये हैं। शिक्षा के क्षेत्र में लोगों की धारणाओं को छोड़ कर नवीन अवधारणाओं को विकसित किया है। यह योगदान इस प्रकार है।

(1) बालक को महत्व

पहले शिक्षा विषय प्रधान और अध्यापक प्रधान थी। उसमें बालक को तनिक भी महत्व नहीं दिया जाता था। उसके मस्तिष्क को खाली बर्तन समझा जाता था जिसे ज्ञान से भरना शिक्षक का मुख्य कर्तव्य था। मनोविज्ञान ने बालक के प्रति इस दृष्टिकोण में परिवर्तन करके शिक्षा को बाल केंद्रित बना दिया है। अब शिक्षा बालक केंद्रित है।

6

(२) बालकों की विभिन्न अवस्थाओं का महत्व

प्राचीन शिक्षा पद्धति में सभी आयु के बालकों को एक सी शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता था। मनोवैज्ञानिकों ने इन दोनों बातों को अनुचित और दोषपूर्ण सिद्ध कर दिया है। उनका कहना है कि बालक जैसे जैसे बड़ा होता जाता है वैसे वैसे उसकी रुचियाँ और आवश्यकताएँ बदलती जाती है। उदाहरणार्थ बाल्यावस्था में उसकी रुची खेल में होती है, पर किशोरावस्था में वह खेल और कार्य में अंतर समझने लगता है। इस बात को ध्यान में रखकर बाल्यावस्था में खेल द्वारा और किशोरावस्था में अन्य विधियों द्वारा शिक्षा दी जाती है।

(३) बालकों की रुचियाँ या मूलप्रवृत्ति का महत्व

पूर्व काल की किसी भी शिक्षा योजना में बालकों की रुचियों और मूल प्रवृत्तियों का कोई स्थान नहीं था। उन्हें ऐसे अनेक विषय पढने पड़ते थे, जिनमें उनकी तनिक भी रुची नहीं होती थी, और जिनका उनकी मूल-प्रवृत्तियों से कोई संबंध नहीं होता था। मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि जिस कार्य में बालकों की रुची होती है, उसे वे जल्दी सीखते है। इसके अतिरिक्त वे कार्य करने में अपनी मूल प्रवृत्तियों से प्रेरणा प्राप्त करते है। अतः अब बालकों की शिक्षा का आधार उनकी रुचियाँ और मूल-प्रवृत्तियाँ है।

(४) बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का महत्व

शिक्षा की प्राचीन विधियों में बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता था। अतः सबके लिए समान शिक्षा का आयोजन किया जाता था। अब मनोविज्ञान

7 ने इस बात पर हमेशा प्रकाश डाला है कि बालकों की रुचियों, क्षमताओं, योग्यताओं, आदि में अंतर होता है। अतः सब बालकों केलिए समान शिक्षा का आयोजन सर्वथा अनुचित है। इस बात को ध्यान में रखकर, मंदबुद्धि, पिछड़े हुए और शारीरिक दोषवाले बालकों केलिए अलग अलग प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।

(5) पाठ्यक्रम में सुधार

पहले समय में पाठ्यक्रम के सब विषय सब बालकों केलिए अनिवार्य होते थे। इसके अतिरिक्त वह पूर्ण रूप से पुस्तकीय और ~~ज्ञान~~ ज्ञान प्रधान ~~था~~ थे। मनोविज्ञान ने पाठ्यक्रम के इन दोनों दोषों की कटु आलोचना की है। यह इस बात पर बल देता है कि पाठ्यक्रम का निर्माण बालकों की आयु, रुचियों और मानसिक योग्यताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। यही कारण है कि आठवीं कक्षा के बाद पाठ्यक्रम को साहित्य, वैज्ञानिक आदि वर्गों में ~~वि~~ विभाजित कर दिया गया है।

(6) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं ~~का~~ पर बल

प्राचीन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का मानसिक विकास करना था। अतः पुस्तकीय ज्ञान को ही महत्व दिया जाता था और पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का कभी विचार भी नहीं नहीं किया गया। मनोविज्ञान ने बालक के सर्वांगीण विकास केलिए इन क्रियाओं को बहुत महत्वपूर्ण बताया है। यही कारण है कि आजकल विद्यालयों में खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि की विशेषरूप से व्यवस्था की जाती है।

(7) सीखने की प्रक्रिया में उन्नति

पहले शिक्षकों को सीखने की प्रक्रिया का कोई ज्ञान नहीं था। मनोविज्ञान ने सीखने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में

खोज करके अनेक अच्छे नियम बनाये हैं। इनका प्रयोग करने से बालक कम समय में और अधिक अच्छी प्रकार से सीख सकता है।

(ड) शिक्षण विधियों में सुधार

प्राचीन शिक्षा पद्धति में शिक्षण विधियाँ मौखिक थी। और बालकों को स्वयं सीखने का कोई अवसर नहीं दिया जाता था। वे मौन श्रोताओं के समान शिक्षक द्वारा कही जानेवाली बातों को सुनते थे और फिर उनको कंठस्थ करते है। मनोविज्ञान ने इन शिक्षण विधियों में परिवर्तन कर दिया है। उसने ऐसी विधियों का आविष्कार किया है जिनसे बालक स्वयं सीख सकता है। इस उद्देश्य से करके सीखने, खेल द्वारा सीखना, रेडियो, पर्यटन, चलचित्र आदि को शिक्षण विधियों में स्थान दिया जाता है।

(च) अनुशासन की नयी विधियाँ

पहले समय में बालकों को अनुशासन में रखने की केवल एक विधि थी - शारीरिक दंड। मनोविज्ञान ने दंड, भय, कठोरता पर आधारित अनुशासन को सारहीन प्रमाणित कर दिया है। इसके स्थान पर प्रेम, प्रशंसा और सहानुभूति को अनुशासन के अधिक अच्छे आधार बताया है।

(छ) मूल्यांकण की नयी विधियाँ

बालकों द्वारा अर्जित किये जानेवाले ज्ञान का मूल्यांकण करने के लिए अति दीर्घकाल से मौखिक और लिखित परीक्षाओं का प्रयोग किया जा रहा है। मनोविज्ञान ने इन दोषों को दूर करने के लिए बुद्धिपरीक्षा, व्यक्तित्व परीक्षा, वस्तुनिष्ठ परीक्षा आदि का प्रयोग कर दिया।

१

① शिक्षा मनोविज्ञान

शिक्षा मनोविज्ञान क्या है ?

(शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें हम शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन मनोवैज्ञानिक रूप से करते है। वर्तमान युग में शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्रों में व्यापक अनुसंधान हुए है। इन अनुसंधानों ने शिक्षा तथा मनोविज्ञान के सम्बन्धों को एक नयी दिशा दी है। आज संपूर्ण शिक्षा का कार्य मनोविज्ञान पर आधारित है। मापन व मूल्यांकन, समय सारिणी का निर्माण, अनुशासन, बाल अध्ययन आदि जैसे क्षेत्रों की समस्याओं के लिए हम आज मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों का सहारा लेते है। कहने का तात्पर्य यह है कि आज शिक्षा तथा मनोविज्ञान के बीच अटूट संबंध स्थापित किया हो गया है। और इस सम्बन्ध के कारण मनोविज्ञान की एक नयी शाखा विकास हुई है, जिसे हम शिक्षा मनोविज्ञान कहते है। उसमें हम शिक्षण तथा शिक्षा की विभिन्न समस्याओं का मनोविज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर अध्ययन करते।)

कुछ परिभाषाएँ

स्किनर " शिक्षा मनोविज्ञान का संबन्ध मानवीय व्यवहार या मानव व्यक्तित्व के अध्ययन से, व्यक्ति के विकास से तथा शिक्षा की सामाजिक प्रक्रिया के निर्देशन से "।

✓ क्रो व क्रो " शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तक सीखने के अनुभवों का वर्णन तथा व्याख्या करता है।"

स्टीफन " शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षणिक विकास का क्रमिक अध्ययन है।

शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति

पहले यह समझा जाता है कि जब सामान्य मनोविज्ञान के सिद्धान्तों तथा तथ्यों का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्रों में किया जाता है तब उसे शिक्षा मनोविज्ञान कहते हैं। किन्तु वर्तमान में शिक्षा मनोविज्ञान ने एक स्वतंत्र विषय तथा विज्ञान का रूप धारण कर लिया है। उसका क्षेत्र भी आज बहुत ही व्यापक हो गया है। अब यह मनोविज्ञान पर आश्रित नहीं रहा है। आज स्थिति यह है कि मनोविज्ञान से जो तथ्य तथा सिद्धान्त उसे प्राप्त होते हैं इनका प्रयोग भी यह स्वयं जांच करके करता है। अब उसने एक स्वतंत्र विषय का रूप ले लिया।

वर्तमान में शिक्षा मनोविज्ञान जहाँ एक ओर एक शैक्षणिक विषय बना है वहाँ दूसरी ओर उसने एक विज्ञान का रूप भी धारण किया है। सामान्यतः अध्ययन करके केवल विज्ञान निम्नलिखित सोपानों का प्रयोग करते हैं।

(1) निरीक्षण
(2) तथ्यों का वर्गीकरण
(3) विश्लेषण तथा विवेचन
(4) सामान्यीकरण
(5) प्रमाणीकरण

वैज्ञानिक विधि से प्राप्त परिणामों में सार्वभौमिकता, वैधता, विश्वसनीयता, भविष्य कथन और आदि महत्व गुण पाये जाते हैं।

शिक्षा मनोविज्ञान एक विज्ञान है उसके अध्ययन में निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं।

(1) इसके अध्ययन वैज्ञानिक निरीक्षण पर आधारित होते हैं।

11 (२) इसके परिणामों में सार्वभौमिकता पायी जाती है।
(३) इसके परिणामों के आधार पर भविष्यवाणी की जा सकती है।
(४) इसके परिणामों का प्रमाणीकरण संभव है।

अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा मनोविज्ञान आज सामान्य मनोविज्ञान की भाँति एक विज्ञान का स्वरूप ले चुकी है। इसमें निम्न तथ्यों पर जोर दिया जाता है।

(१) शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन का केन्द्रबिन्दु बालक व्यवहार है।

(२) शिक्षा मनोविज्ञान में खोज व निरीक्षण द्वारा प्राप्त तथ्यों का संग्रह किया जाता है।

(३) शिक्षा मनोविज्ञान में संग्रह किये तथ्यों को सैद्धान्तिक रूप प्रदान किया जाता है।

(४) शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा संबंधी समस्याओं का हल ढूँढने के लिए स्वयं ही पद्धतियों का प्रतिपादन करता है।

(५) यह अपने अध्ययन के लिए वयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार की वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करती है।

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र

मनोविज्ञान द्वारा हम शिक्षा मनोविज्ञान के नियमों तथा ज्ञान का शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग करते हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास तथा उसका व्यवहार को इस तरह परिमार्जित करना है कि वह ऐसा नागरिक बन सके जिससे वह अपने तथा समाज के लिए हितकारी बन सके। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शिक्षा की विभिन्न परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन ही शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र है। इसलिए शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में हम निम्न लिखे विषय को सम्मिलित कर सकते हैं :-

12 (1) बालक का शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास करना।

(2) मानव के विकास पर वंशानुक्रम तथा वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(3) अधिगम (सीखना) की प्रक्रिया में चिन्तन, तर्कशक्ति, कल्पना-शक्ति तथा स्मृतियों का अध्ययन करना।

(4) बालकों के विकास की अवस्थाओं का अध्ययन करना।

(5) बालक की मूलप्रवृत्तियों, संवेगों, तथा सामान्य रुचियों का अध्ययन करना।

(6) आदत निर्माण, स्थायी भाव और चरित्र निर्माण का अध्ययन करना।

(7) व्यक्तित्व का विकास तथा इसका मापन व मूल्यांकन करना।

(8) अचेतन मन पर व्यक्तित्व के अध्ययन करना।

(9) बुद्धि और उसके मापन का अध्ययन करना।

(10) मानसिक स्वास्थ्य के बारे में अध्ययन करना।

(11) अवधान का अध्ययन करना।

(12) विशिष्ट एवं पिछड़े की शिक्षा की व्यवस्था का अध्ययन करना।

(13) सीखने की क्रियाओं अध्ययन करना।

(14) शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन।

(15) अनुशासन संबन्धी समस्याओं का अध्ययन।

शिक्षक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता

शिक्षक के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान बहुत आवश्यक उपयोगी और महत्वपूर्ण है। क्या शिक्षण और बालकों के दैनिक संपर्क में मनोविज्ञान का प्रयोग किये बिना वह अपने कार्य को कुशलता से संपन्न नहीं कर सकता। अपने शिक्षण कार्य को सफल और छात्रों के सीखने को व्यापक बनाने के लिए उसे मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का अनिवार्य रूप से प्रयोग करना

13 चाहिए। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्किनर ने यह विचार व्यक्त किया है "शिक्षकों को अपने शिक्षण में उन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करने के लिए तैयार रहना चाहिए, जो सफल शिक्षण और प्रभावशाली अधिगम के लिए अनिवार्य हैं"।

★ शिक्षक के लिए मनोविज्ञान की उपयोगिता आवश्यकता

(1) स्वयं का ज्ञान व तैयारी

व्यक्ति किसी कार्य को करने में तभी सफल होता है, तब उसमें उस कार्य को करने की योग्यता होती है। शिक्षा मनोविज्ञान की सहायता से अध्यापक अपने में निहित स्वभाव, बुद्धिस्तर, व्यवहार, योग्यता, आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। यह ज्ञान उसे शिक्षण कार्य में सफल बनने में सहायता देता है। और इस प्रकार उसकी व्यावसायिक तैयारी में अत्यधिक योग देता है। स्किनर का मत है "शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों की तैयारी की आधार शिला है"।

(2) बाल विकास का ज्ञान

मनोविज्ञान के अध्ययन से शिक्षक को बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान हो जाता है। वही अवस्थाओं में बालकों की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि विशेषताओं से परिचित हो जाता है। वह विशेषताओं को ध्यान में रखकर विभिन्न अवस्थाओं के बालकों के लिए पाठ्यविषयों और क्रियाओं का चुनाव करने में सफलता प्राप्त करता है।

(3) बाल स्वभाव व व्यवहार का ज्ञान

शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को बालक के स्वभाव और व्यवहार से अवगत कराता है। इन दोनों बातों के

आधार बालक की मूल प्रवृत्तियाँ और संवेग होते। अध्यापक विभिन्न अवस्थाओं की बालकों की मूल प्रवृत्तियों और संवेगों से परिचित होने के कारण उनका अधिक उत्तम शिक्षण और निर्देशन करने में सफल होता है। 'रायबर्न' के मत है "हमें बाल स्वभाव और व्यवहार का जितना अधिक ज्ञान होता है उतना ही अधिक प्रभाव पूर्ण बालक से हमारा संबन्ध होता है"। मनोविज्ञान हमें यह ज्ञान प्राप्त करने में सहायता दे सकता है।

4- बालक का चरित्र निर्माण :-

शिक्षा मनोविज्ञान बालकों के चरित्र निर्माण में सहायता देता है। यह शिक्षक को उन विधियों को बताते है.. जिनका प्रयोग करके वह अपने छात्रों में नैतिक गुणों का विकास कर सकता है।

5- बालकों का ज्ञान :-

शिक्षक अपने कर्तव्यों का कुशलता से पालन तभी कर सकता है, जब उसे अपने छात्रों का पूर्ण ज्ञान हो वह भले ही अपने विषय और इसके शिक्षण में अद्वितीय योग्यता रखता हो पर यदि उसे अपनी छात्रों का ज्ञान नहीं है तो उसे पग-पग पर निराशा को अपनी सहचरी बनाना पड़ता है। किसी विषय और उसकी शिक्षण

15 मे योग्यता होना एक बात है, पर इनको छात्रों की रुचियों और क्षमताओं की अनुकूल बनाना दूसरी बात है।

6) बालकों की आवश्यकता का ज्ञान :-

विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले बालकों की कुछ आवश्यकताएँ होती है। जैसे- प्रेम, आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और किये जानेवाले कार्यों की स्वकृती की आवश्यकता। यदि उनकी ये आवश्यकतायें पूर्ण कर दी जाती है तो वे संतुष्ट हो जाते और फलस्वरूप उनका विकास स्वाभाविक ढंग से होता है। शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों को बालकों की इन आवश्यकताओं से अवगत कराता है। स्किनर के शब्दों में "अध्यापक शिक्षा मनोविज्ञान से प्रत्येक छात्र की अनोखी आवश्यकताओं के बारे में बहुत कुछ सीख सकते है।

7- बालक की व्यक्तिगत विभिन्नता का ज्ञान :-

मनोविज्ञान की खोजों ने सिद्ध कर दिया है कि बालकों की रुचियों, क्षमताओं, योग्यताओं आदि में अन्तर होता है। शिक्षक को कक्षा में ऐसे ही बालकों को शिक्षा देनी पड़ती है। वह अपने इस कार्य में तभी सफल हो सकता है जब वह मनोविज्ञान का अध्ययन करे उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओं से पूर्ण रूपेण

16 परिचय हो जाय।

8- बालकों की मूलप्रवृत्तियों की ज्ञान :-

मैकडूगल के अनुसार - "मूलप्रवृत्तियाँ संपूर्ण मानव व्यवहार की चालक है"। शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को बताते है कि मूलप्रवृत्तियां विभिन्न आयू के बालकों मे किस प्रकार के व्यवहार का कारण होती है यह ज्ञान शिक्षक के लिये बहुत लाभदायक होता है। क्योंकि शिक्षक बालकों के व्यवहार के कारणों को समझकर उसमें वाँचनीय परिवर्तन कर सकता है। इसप्रकार वह उनको, समाज को, विद्यालय का सभी का हित कर सकता है।

9- बालकों की व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास :-

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालकों का व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ती मे शिक्षा मनोविज्ञान अतिशय योग देता है। यह शिक्षक को उन विधियों की जानकारी प्रदान करता है, उनका प्रयोग करने से बालकों के व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास किया जा सकता है।

10- कक्षा की समस्याओं का समाधान :-

कक्षा - कक्ष की मुख्य समस्यायें है अनुशासन हीनता, बालापराध, समस्याबालक, छात्रो

17 का पिछड़ापन आदि। शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक को इन समस्याओं के कारणों को खोजने और इनको दूर करने में सहायता देता है। आज स्थिति यह है कि कक्षागत शिक्षण व व्यवहार दोनों का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा होता है।

11- अनुशासन में सहायता :-

शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को अनुशासन स्थापित करने और रखने की अनेक नवीन विधियां बताता है। इस सम्बन्ध में "मेल्वी" ने लिखा है - " जो शिक्षक अपने छात्रों की रुची के अनुसार शिक्षा देते हैं, उनके सामने अनुशासन की कठिनाई आती है। हम जब पाठ्यक्रम शिक्षण - विधियों और शिक्षण सामग्री में सुधार करते हैं, तब हम अनुशासन की समस्याओं का पर्याप्त समाधान कर देते हैं या उनका अंत कर देता "।

12- उपयोगी पाठ्यक्रम का निर्माण :-

विकास की विभिन्न समस्याओं में बालकों की रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ और आवश्यकतायें विभिन्न होती हैं। मनोविज्ञान इन बातों का ज्ञान प्रदान करके अध्यापकों के विभिन्न अवस्थाओं के बालकों के लिए उपयोगी पाठ्यक्रम का निर्माण

18 करने में सहायता देता है।

13- उचित शिक्षण विधियों का प्रयोग :-

शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों को बताते हैं कि विभिन्न परिस्थितियों में बालक को सफलता पूर्ण सिखाने के लिए कौन सी शिक्षण विधियाँ सबसे अधिक उचित और उपयोगी हो सकती है। स्किनर का कथन है - "शिक्षामनोविज्ञान विज्ञान अध्यापक को शिक्षण विधियों का चुनाव करने में सहायता देने के लिए सीखने के अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है"।

14- मूल्यांकन की नई विधियों का प्रयोग :-

मूल्यांकन छात्र अध्यापक दोनों के लिए आवश्यक है। छात्र वह जानना चाहता है कि उसने कितना ज्ञान प्राप्त किया है। शिक्षक यह जानना चाहता है कि वह छात्र को ज्ञान प्रदान करने में किस सीमा तक सफल हुआ है। शिक्षा मनोविज्ञान मूल्यांकन की ऐसी अनेक विधियाँ बताते है। जिसका प्रयोग करने से छात्र अपनी प्रगती का और शिक्षक छात्र का प्रगती का अनुमान लगा सकता है। शिक्षक को होनेवाले एक अन्य लाभ के बारे में स्किनर ने लिखा है - "शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षक को शिक्षक के रूप में अपनी स्वयं की कुशलता का मूल्यांकन करने में सहायता देता है।

Lesson: 2.

विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

शैशवावस्था जीवन के सबसे महत्वपूर्ण काल

जब से बालक का जन्म होता है तभी से उसका ~~के~~ विकास प्रारंभ हो जाता है। प्राय: बालकों के विकास की अवस्थाएँ नीचे दिए गए रूप में मानी जाती है।

जन्म से छह वर्ष तक शैशवावस्था है।

छह से बारह वर्ष तक बाल्यावस्था है।

बारह से अठारह वर्ष तक किशोरावस्था है।

शैशवावस्था - विशेषताएँ

विकास की सभी अवस्थाओं में शैशव काल का ही महत्व अधिक है। फ्रायड ने कहा कि "मनुष्य को जो कुछ बनना होता है, प्रारंभ के चार-पाँच वर्षों में ही बन जाता है। एडलर ने कहा, "शैशवावस्था के द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्चित होता है"

(1) शिशु को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। वह अपने खाने-पीने तथा वस्त्र पहनने आदि के लिए अपने माता-पिता अथवा अभिभावकों पर आश्रित रहता है।

(2) बालक के जीवन का अधिकांश व्यवहार मूलप्रवृत्ति द्वारा निर्धारित होते।

(3) शैशवकाल में आत्मप्रेम की भावना बड़े तीव्र रूप में पायी जाती है।

(4) शैशवकाल कल्पना से पूर्ण होता है। बालक में कल्पना की मात्रा इतनी अधिक होती है कि कल्पना और सत्य में अंतर नहीं कर पाता।

२०

(६) इस अवस्थाओं के बालकों में आवृत्ति करने की भावना बड़ी प्रबल होती है।

(७) ऐसा समझा जाता है कि बालक काम-विषय बातों में किसी भी प्रकार की रुचि नहीं रखते। परन्तु आज के युग में मनोविश्लेषणवादी इस बात को नहीं मानते। उनका कथन है कि शिशु में कामभावना बड़ी प्रबल पायी जाती है।

(ग) शैशवावस्था में शारीरिक विकास

क्रो व क्रो के अनुसार "शैशवावस्था में शारीरिक विकास अग्रलिखित प्रकार से होता है"

(1) भार – जन्म के समय और पूरी शैशवावस्था में बालक का भार बालिका से अधिक होता है। जन्म के समय बालक का भार लगभग ७.१५ पौंड और बालिका का भार लगभग ७.१३ पौंड होता है। पहले छः माह में शिशु का भार दुगुना और एक वर्ष के अंत में तिगुना हो जाता है। दूसरे वर्ष में शिशु का भार केवल १/२ पौंड प्रतिमास के हिसाब से बढ़ता है। और पाँच वर्ष के अंत में ३८ एवं ४३ पौंड के बीच में होता है।

(2) लंबाई :- जन्म के समय और संपूर्ण शैशवावस्था में बालक की लंबाई बालिका से अधिक होती है। जन्म के समय बालक की लंबाई लगभग २०.५ इंच और बालिका की लंबाई २०.३ इंच होती है। अगले तीन या चार वर्षों में बालिकाओं की लंबाई बालकों से अधिक हो जाती है। उसके बाद बालकों की लंबाई बालिकाओं से आगे निकल जाती है।

21

(3) सिर के आरिवर्तन :- नवजात शिशु के सिर की लंबाई उसके शरीर की कुल लंबाई की 1/4 होती है। पहले दो वर्ष में सिर बहुत तीव्र गति से बढ़ता है। इसके बाद यह मंद हो जाती है। जन्म के समय शिशु के मस्तिष्क का भार 350 ग्राम होता है। यह भार दो वर्ष में दुगुना, पाँच वर्ष में शरीर के कुल भार का लगभग 80% हो जाता है।

(4) हड्डियाँ :- नवजात शिशु की हड्डियाँ छोटी और संख्या में 270 होती है। अपूर्ण अवस्था में छोटी कोमल लचीली होती है और भली प्रकार जुड़ी हुई नहीं होती है। 'कैल्शियम फोस्फेट' और अन्य खनिज पदार्थों की सहायता से दिन-प्रतिदिन कड़ी होती चली जाती है। इस प्रक्रिया को 'अस्थीकरण' कहते है। बालकों की तुलना में बालिकाओं में अस्थीकरण की गति तीव्र होती है।

(5) दाँत :- छठे माह में शिशु के हलाइयां दूध के दाँत निकलने आरंभ हो जाते है। सबसे पहले नीचे के दाँत निकलते है और एक वर्ष की आयु तक उनकी संख्या आठ हो जाती है। लगभग चार वर्ष की आयु तक शिशु के दूध के सभी दाँत निकल जाते है।

(6) अन्य अंग :- नवजात शिशुओं की माँस पेशी का भार इसके शरीर के कुल भार का 23% होता है। यह भार धीरे-धीरे बढ़ता चला जाता है। जन्म की समय हृदय की धड़कन काफी तेज और काफी धीमी होती है। जैसे जैसे हृदय बड़ा हो जाता है वैसे वैसे

धड़कन मे स्थिरता हो जाते हैं। पहले माह में शिशु के धड़कन प्रति मिनिट में 140 time तक हो जाते हैं। लगभग छह: वर्ष की आयु में इनकी संख्या घटकर 100 हो जाते हैं।

विकास का महत्व

तीन वर्ष की आयु में शिशु के शरीर और मस्तिष्क में संतुलन आरंभ हो जाता है। उसके शरीर के लगभग सब अंग कार्य करने लगते हैं। और उसके हाथ और पैर मजबूत हो जाते हैं। स्ट्रांग (Strang) ने लिखा है " शिशु अपनी दैनिक जरूरतों में आत्मनिर्भर हो जाते हैं। पाँच वर्ष के अंत तक अनेक शिशु स्वतंत्रता और कुशलता प्राप्त कर लेते हैं" ।

(ii) शैशवावस्था में मानसिक विकास

(1) जन्म के समय व पहला सप्ताह

जॉन लॉक का मत है " नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरे-कागज के समान होता है जिस पर अनुभव लिखता है"// फिर भी शिशु जन्म के समय से ही कुछ कार्य जानता है। जैसे छींकना, दूध पीना, हाथ-पैर हिलाना, जोर की आवाज सुनकर चौंकना।

(2) दूसरा सप्ताह :-

शिशु प्रकाश, चमकीली और बड़े आकार की वस्तुओं को ध्यान से देखता है।

(3) पहला माह

शिशु कष्ट या भूख का अनुभव होने पर विभिन्न प्रकार

23 से चिल्लाता है और हाथ में दी जानेवाली वस्तु को पकड़ने की चेष्टा करता है।

(4) दूसरा माह (तीसरा)

शिशु आवाज सुनने के लिए सिर घुमाता है। सब स्वरों की ध्वनियाँ उत्पन्न करता है और वस्तुओं को अधिक ध्यान से देखता है।

(5) चौथा माह

शिशु सब व्यंजनों की ध्वनियाँ करता है। दी-जानेवाली वस्तु को दोनों हाथों से पकड़ता है।

(6) छठा माह

शिशु अपने पसंद का खिलौना छाँटता है। और दूसरे बच्चों के साथ खेलने में आनन्द ~~लेता~~ लेता है।

(7) दसवाँ माह

शिशु विभिन्न प्रकार की आवाज़ों और दूसरे शिशुओं की गतियों का अनुकरण करता है। एवं अपना खिलौना छीनने पर विरोध करता है।

(8) पहला वर्ष

शिशु चार-पाँच शब्द बोलता है। और दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं का अनुकरण करता है।

(9) दूसरा वर्ष

शिशु दो शब्दों के वाक्यों का प्रयोग करता है। वर्ष के अंत तक उसके पास सौ से दो सौ तक शब्दों का भण्डार हो जाता है

(ग) तीसरा वर्ष

शिशु पूछे जाने पर अपना नाम बताता है। और सीधी या लंबी रेखा देखकर वैसी ही रेखा खींचने का प्रयत्न करता है।

(घ) चौथा वर्ष

शिशु चार तक गिनती करता है। छोटी और बड़ी रेखाओं में अंतर जान जाता है। अक्षर लिखना आरंभ कर देता है। और ~~वह~~ वस्तुओं को क्रम से रखता है।

(ङ) पाँचवा वर्ष

शिशु हल्की और भारी वस्तुओं एवं विभिन्न प्रकार के रंगों में अंतर जान जाता है। वह अपना नाम लिखने लगता है। संयुक्त और जटिल वाक्य बोलने लगता है।

(iii) शैशवावस्था में सामाजिक विकास

क्रो-व क्रो ने लिखा है, जन्म के समय शिशु न तो सामाजिक प्राणी होता है, और न असामाजिक। पर वह इस स्थिति में बहुत समय तक नहीं रहता। दूसरे व्यक्तियों के निरंतर संपर्क में रहने के कारण उसकी स्थिति में परिवर्तन होना और फल स्वरूप उसका सामाजिक विकास होना आरंभ हो जाता है। Hurlock ने इस विकास क्रम का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया है।

(i) पहले माह में शिशु साधारण और मनुष्यों की आवाज में अंतर नहीं जानता।

(ii) दूसरे माह में साधारण आवाज और मनुष्य की आवाज में अंतर पहचानने लगता है। वह दूसरे व्यक्तियों को

25 अपने पास देखकर मुस्कुराता है।

(३) तीसरे माह में वह अपनी माँ को पहचानने लगता है। वह दूसरे व्यक्तियों को अपने पास देखकर मुस्कुराता है।

(४) चौथे माह में वह आनेवाले व्यक्ति को देखता है और जब कोई उसके साथ खेलता है, तब वह हँसता है।

(५) पाँचवे माह में वह क्रोध और प्रेम के व्यवहार में अंतर समझने लगता है।

(६) छठे माह में वह परिचित व्यक्तियों को पहचानने और अपरिचित व्यक्तियों से डरने लगता है।

(८) आठवे माह में वह बोलने जानेवाले शब्दों और हाव भाव का अनुकरण करने लगता है।

(९) एक वर्ष कि आयु में मना किये जानेवाले कार्यों को नहीं करता है।

(१) दो वर्ष की आयु में वह बयस्कों के साथ (बूढ़ों) कोई न कोई कार्य करने लगता है और इस प्रकार वह परिवार को सक्रिय सदस्य हो जाता है।

(१०) तिसरे वर्ष में दूसरे बालकों के साथ खेलने लगता है और इस प्रकार उनसे सामाजिक संबन्ध स्थापित करता है।

(11) तीन वर्ष की आयु तक उसका सामाजिक व्यवहार आत्मकेन्द्रित रखता है पर यदि इस आयु में वह किसी Nursery School में प्रवेश करता है तो उसके व्यवहार में परिवर्तन होना आरंभ हो जाता है और वह नये सामाजिक संबन्ध स्थापित करता है।

(१२) पाँचवे वर्ष में (शिशू) दूसरे बच्चों के सामूहिक जीवन से अनुकूलन स्थापित करता है। उनसे मेल जोल करता है।

IV संवेगात्मक विकास

(1) शिशु अपने जन्म के समय से ही संवेगात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है। उसका रोना, चिल्लाना, हाथ, पैर पटकना इस बात का प्रमाण है।

(2) शिशु के संवेगात्मक व्यवहार में अत्यधिक अस्थिरता होती है। उसका संवेग कुछ ही समय के लिए रहता है और फिर सहसा समाप्त हो जाता है। उदा: रोता हुआ शिशु खिलौना पाकर तुरंत रोना बंद करके हँसना आरंभ कर देता है. जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उसके संवेगात्मक व्यवहार में स्थिरता आती जाती है।

(3) शिशु के संवेगों में आरंभ में अत्यधिक तीव्रता होती है। धीरे-धीरे इस तीव्रता में कमी होती चली जाती है। दो या तीन माह का शिशु भूख लगने पर तब तक रोता है जब तक उसको दूध नहीं मिल जाता है। चार या पाँच वर्ष का शिशु इस प्रकार का व्यवहार नहीं करता है।

(4) शिशु के संवेगात्मक विकास में क्रमशः परिवर्तन होता चला जाता है। उदाहरणार्थ :- शिशु आरंभ में प्रसन्न होने पर मुस्कुराता है, कुछ समय के बाद वह अपनी प्रसन्नता को हँसकर विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न करके या बोलकर व्यक्त करता है।

(5) शिशु के संवेगों में पहले अस्पष्टता होती है पर धीरे-धीरे उसमें स्पष्टता आती जाती है।

(6) 'जर्सिल (Jersild)' के अनुसार तीन वर्ष की आयु से शिशु में अपने साथियों के प्रति प्रेम का विकास हो जाता है। और वह उनके साथ खेलता एवं हँसता है।

(7) 'क्रो' के अनुसार शिशु अपने साथियों और बड़े लोगों के

27

संवेगात्मक व्यवहार का अनुकरण करता है। वह क्रोध का क्रोध से और प्रेम का प्रेम से उत्तर देता है। वह अपनी माता और अपने किसी प्रिय व्यक्ति के अतिरिक्त और किसी के प्रति सहानुभूति प्रकट नहीं करता है।

V शैशवावस्था में नैतिक विकास

(1) तीन माह तक शिशु को अपने उचित या अनुचित आचरण के संबन्ध में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता।

(2) एक वर्ष की आयु में वह बड़े लोगों की इच्छानुसार आचरण करना जान जाता है।

(3) दो वर्ष की आयु में वह अपने अच्छे या बुरे कार्यों के अनुसार अपने को अच्छा लड़का या खराब लड़का समझने लगता है।

(4) दो वर्ष की आयु में वह स्वार्थी होता है। और अपने खिलौने किसी को देना नहीं चाहता।

(5) तीन वर्ष की आयु तक वह अनैतिक प्राणी रहता है। पर यह समझने लगता है कि उसे बड़ों के आदेशों के अनुसार कार्य करना चाहिए।

(6) चार वर्ष की आयु में वह अच्छे और बुरे कार्यों में अंतर समझने लगता है।

(7) पाँच वर्ष की आयु के वह अपने माता पिता की इच्छाओं के अनुसार कार्य करने लगता है और उनके मूल्यों को बिना समझे हुए स्वीकार करने लगता है।

IX बाल्यावस्था

28

II बाल्यावस्था

(1) शारीरिक विकास

क्रो एवं क्रो के अनुसार बाल्यावस्था में शारीरिक विकास निम्नलिखित प्रकार से होता है।

(1) भार :- बाल्यावस्था में बालक के भार में पर्याप्त वृद्धि होती है। बारह वर्ष के अंत तक उसका भार 80 पौंड और 95 पौंड के बीच में होता है। 9 या 10 वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं से अधिक होता है। इसके बाद बालिकाओं का भार अधिक होना आरंभ हो जाता है।

(2) लंबाई :- बाल्यावस्था में 6 से 12 वर्ष तक शरीर की लंबाई कम बढती है। इन सब वर्षों में लगभग दो या तीन इंच ही बढती है।

(3) सिर व मस्तिष्क :- बाल्यावस्था में सिर के आकार में क्रमशः परिवर्तन होता रहता है। पाँच वर्ष की आयु में बालक के मस्तिष्क के भार में कुछ परिवर्तन होता रहता है। नौ वर्ष की आयु में बालक के मस्तिष्क का भार उसके कुल शरीर के भार का 90% होता है।

(4) हड्डियाँ :- बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या और अस्थिकरण अर्थात दृढता में वृद्धि होती रहती है। इस अवस्था में हड्डियों की संख्या 270 से बढकर 350 हो जाती है।

(5) दाँत :- लगभग छह: वर्ष की आयु में बालक के दूध के दाँत गिरने और इनके बजाई स्थाई दाँत निकलने आरंभ हो जाते हैं। 12 या 13 वर्ष तक उसके सब स्थाई

दाँत निकलते। बालिकाओं के स्थाई दाँत बालकों से जल्दी निकलती हैं।

(6) माँसपेशियों का विकास :- बालकों की अपेक्षा कन्याओं की माँसपेशियाँ अधिक विकसित होती हैं। कन्याओं का अस्थीकरण एक वर्ष पहले ही प्रारंभ हो जाता है। आठ से दस वर्ष तक अस्थियों का विकास होता है। दस से ग्यारह वर्ष की आयु तक अस्थियों का दृढ़ीकरण होता है। बारह वर्ष की आयु तक आते आते बालक का अपनी माँसपेशियों पर पूरा नियंत्रण होने लगता है।

(7) विकास का महत्व :- बाल्यावस्था में बालक के लगभग सब अंगों का विकास हो जाता है। फल स्वरूप वह अपनी शारीरिक गति पर नियंत्रण करना जान जाता है। अपने सभी कार्य स्वयं करने लगता है और दूसरों पर निर्भर नहीं रह जाता।

(ii) मानसीक विकास

शैशवकाल में बालक केवल उसी पदार्थ के संबंध में सोचता है जो उसके सामने हो। परंतु बाल्यावस्था में पदार्थ के सामने न होने पर भी बालक उसके संबंध में सोच सकता है। इस अवस्था में बालक की स्मरण शक्ति का विकास बड़ी तीव्र गति से होता है। बालक की स्थाई स्मृती में वृद्धी होने लगती है तथा किसी पदार्थ के प्रती बालक का अवधान बढ़ने लगता है।

बाल्यावस्था में जिज्ञासा की प्रवृत्ती विशेष रूप से प्रकाशित होती है। बालक अपने वातावरण से संबंधित वस्तुओं के संबंध में बहुत कुछ जानना

चाहता है - "यह वस्तु ऐसा क्यों है ?", इस काम को क्यों पूरा करेंगे"?, "यह पंछी कहाँ जा रहा है"? इस प्रकार के प्रश्न बालक पूछते रहते। अध्यापकों तथा बालक के माता पिता का यह कर्तव्य है कि इसका उचित रूप से समाधान करना। यदि वे बालकों को डरायेंगे या धमकायेंगे तो उनकी जिज्ञासा वृत्ती दब जायेगी। बाल्यावस्था में बालक की संचय प्रवृत्ती का भी परिचय मिलने लगता है। वह कई प्रकारके पदार्थों का संचय करता है। उनकी जेबें किसी न किसी वस्तु से हमेशा भरी रहेंगी। बाल्यावस्था में बालकों में रचनात्मक प्रवृत्ती भी अधिक होती है। वे कभी-कभी गीली मिट्टी से कभी कभी पत्थर से कुछ न कुछ बनाते ही रहेंगे। इसी प्रकार बाल्यावस्था में बालक की अनुकरण की प्रवृत्ती भी ~~बडी~~ बडे वेग से प्रकट होती है।

(vi) नैतिक विकास (चारित्रिक विकास)

जब बालक शैशवावस्था में होता है तब ~~उसे~~ नैतिक बातों का ज्ञान नहीं होता। बालक बाल्यावस्था में आने पर विभिन्न परिस्थितियों में उचित और अनुचित में अंतर करना जान जाता है। किसी समूह का सदस्य बनने के कारण बालक का दूसरे बालकों से संबंध स्थापित होता है। बालक न्याय और ईमानदारी के प्रति प्रबल भावनाएँ व्यक्त करने लगता है। बालक परिवार के एक विशेष सदस्य और विद्यालय के एक विशेष शिक्षक की आज्ञा अधिक तत्परता से पालन करता है। बालक झूठ बोलना कम कर देता है। मनोविज्ञान

31 से अधिक ध्यान प्राप्त करने के लिए उनके कार्य करता है। और अपने से संबंधित महत्वपूर्ण परिस्थितियों में सत्य बोलने का प्रयास करता है। 'Kolesnik' के अनुसार बालक कुछ सिद्धान्तों को समझने, स्वीकार करने और प्रयोग करने लगता है। वह इन सिद्धान्तों पर आधारित अपने व्यवहार के प्रभाव पर विचार करने लगता है। बालक किसी काम को करने से पहले वह विचार करने लगता है तथा कठोरता के स्थान पर उसमें नम्रता आ जाती है।

(iv) संवेगात्मक विकास

पूर्व बाल्यकाल में संवेगों का दो बार तीव्र आवेग होता है। एक तो लगभग तीन वर्ष की आयु में। दूसरा पाँच वर्ष की आयु में। इस आयु में भय और क्रोध की प्रधानता रहती है। पूर्व बाल्यकाल में बालक भय का अधिक अनुभव करता है। भय अधिकतर अपरिचित वस्तु अथवा व्यक्ति के कारण होता है। जैसे अंधकार, पुलिस तथा अपरिचित पशु आदि। कभी कभी संवेगात्मक तनाव और चिंता भी भय के कारण होते हैं।

पूर्व बाल्यकाल में बालक स्नेह का वातावरण चाहता है। यदि माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य आपस में प्रेम से रहते हैं, और सभी का व्यवहार बालक के साथ सहानुभूति पूर्ण और स्नेह होता है तो वह अधिक स्वस्थ रहता है। इस काल में बालक में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इसलिए वे बिना समझे बूझे इधर उधर के प्रश्न किया करता है। इन प्रश्नों का उत्तर माता पिता नहीं देगा तो

32

बालक के मानसिक विकास में बाधा पड़ती है। इसी काल में उसमें सामाजिकता की विकास होता है। वह अपनी आयु के अन्य बालक मित्रों से मिलकर प्रसन्न होता है।

3-उत्तर बाल्यकाल

इस काल में संवेगात्मक विकास की प्रबलता और प्रचुरता क्रमशः कम होने लगती है। बालक बालिकायें यह समझने लगते हैं कि कौन से व्यवहार बड़ों को अच्छे नहीं लगते। वह यह भी समझने लगते हैं कि भय से दुबक जाना उन्हें डरपोक सिद्ध कर देता। और किसी के प्रति संवेग उत्पन्न करने से लोगों में निंदा होगी। यह संयम घर के बाहर तो सफल हो जाता है पर घर के अंदर इसका पालन कठिन हो जाता है।

इस आयु में भय कम हो जाता है क्योंकि वह बहुत सी वस्तुओं से परिचित हो जाता है। इस अवस्था में बालक में निराशा और असहाय अवस्था की भावना का प्राधान्य रहता है। पूर्व बाल्यकाल की अपेक्षा इस काल में क्रोध कुछ अधिक बढ़ जाता है। क्योंकि अब क्रोध के अवसर पहले की अपेक्षा अधिक होते हैं। इस काल में बालकों में स्वाधीनता की इच्छा प्रबल होती है। इस काल में बालक हँसने की अपेक्षा अधिक मुस्कराता है। इस समय प्रिय व्यक्तियों के साथ रहना उनकी सहायता करना आदि पसंद करते।

VI सामाजिक विकास

पूर्व बाल्यकाल

पूर्व बाल्यकाल में शिशु दूसरे शिशुओं के साथ खेलता है और खेल के माध्यम से वह अपनी आयु के बच्चों की टोली बनाना चाहता है। माता पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को ऐसे अवसर प्रदान करें जिससे कि वे सम आयु के बच्चों के साथ मिलकर खेल सकें। पूर्व बाल्यकाल में बच्चे आपस में लड़ते - झगड़ते भी हैं लेकिन उनका झगड़ा अधिक समय तक नहीं चलता दूसरे दिन फिर वे आपस में मिलता कर लेते हैं।

अध्ययन के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि पूर्व बाल्यकाल के बच्चों को व्यवहार में विविधता होती है। यह विविधता, अनुकरण, सामाजिक अनुमोदन, तादात्म्य के व्यवहारों में दिखाई पड़ता है। बच्चे एक दूसरे का अनुकरण करते।

उत्तर बाल्यकाल

छह: वर्ष की अवस्था में बालक विद्यालय में शिक्षा केलिए आता है। विद्यालय का पर्यावरण उसके सामाजिक विकास में सहायक होता है। विद्यालय में दूसरे बच्चे के साथ मिलकर खेलना, पढ़ना तथा अन्य रचनात्मक कार्य करना बच्चे के सामाजिक विकास केलिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त शिक्षा और शिक्षार्थी का जो आपसी संबन्ध है वह भी सामाजिक विकास के दृष्टि से आवश्यक है। घर का जो रवैया माता पिता का

होता है वही स्थान विद्यालय में शिक्षक का है। यदि शिक्षक और बालक का संबंध स्नेह और सहानुभूति पर आधारित होता है तो बालक का सामाजिक विकास सुचारु रूप से होने लगता है।

इस अवस्था में कुछ बालक प्रौढ़ों के समान व्यवहार करने का प्रयास करते हैं। 7 से 8 वर्ष के बच्चों को अपनी वस्तुओं तथा अधिकारों का कुछ कुछ ज्ञान होने लगता है। वे दूसरे बालकों को खेल में हरा देना चाहते हैं और अपना गृहकार्य भी भली भाँति करने की कोशिश करते हैं। वे अपने मित्रों जैसे कपड़े पहनना चाहते हैं और उनके जैसा व्यवहार भी करना सीखते हैं।

नौ से दस वर्ष के बालक बालिकाओं में खेल में रुचि की दृष्टि से भिन्नता स्पष्ट होने लगती है। दस-ग्यारह वर्ष के बालक बालिकाओं में संगठित रूप से खेल-खेलने की प्रवृत्ति होती है। ग्यारह से बारह वर्ष की अवस्था में बालक-बालिकाएँ उत्सवों और सामाजिक संगठनों में रुचि रखने लगते हैं।

विकास की अवस्थाओं में किशोरावस्था
(3)

बाल्यावस्था के समापन अर्थात तेरह वर्ष की आयु से किशोरावस्था आरंभ होती है। इस अवस्था को तूफान और संवेगों की अवस्था कहा गया है।

~~जर्सि~~ जोणास एवं हिलनसन के विचारानुसार "किशोरावस्था प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में वह काल है, जो बाल्यावस्था के अंत में आरंभ होता है और प्रौढावस्था के आरंभ में समाप्त होता है।" सामान्यतः बालकों की किशोरावस्था लगभग 13 वर्ष की आयु में और बालिकाओं की 12 वर्ष की आयु में आरंभ होती है। किशोरावस्था में बालकों और बालिकाओं में क्रांतिकारी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक परिवर्तन होते है।

किशोरावस्था की मुख्य विशेषतायें

किशोरावस्था को तनाव एवं तूफान की अवस्था माना गया है। इस अवस्था की विशेषताओं को एक शब्द 'परिवर्तन' (Change) में व्यक्त किया जा सकता है। बिग के शब्दों में "किशोरावस्था की विशेषताओं को सर्वोत्तम रूप से व्यक्त करनेवाला एक शब्द है, 'परिवर्तन'। परिवर्तन शारीरिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक होता है।

जिन परिवर्तनों की ओर ऊपर संकेत किया गया है, उनसे संबन्धित विशेषतायें निम्नांकित है।

(i) शारीरिक विकास

किशोरावस्था को शारीरिक विकास का सर्वश्रेष्ठ काल माना जाता है। इस काल में किशोर के शरीर में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। जैसे भार और लंबाई में तीव्र वृद्धि, मांसपेशियों में दृढ़ता, आदि आते हैं। बालक बालिकाओं के वजन (weight) वृद्धि में थोड़ा सा भेद रहता है। यह देखा गया है कि बारह वर्ष से चौदह वर्ष के बीच में बालिकाओं का वजन उसी आयु के बालकों के वजन से अधिक हो जाता है। शारीरिक विकास की दृष्टि से मांसपेशियों का विकास इस काल में बहुत महत्वपूर्ण होता है। किशोरावस्था शरीर, आकार, आकृति आदि प्रौढ़ व्यक्तियों के समान हो जाते हैं। बालकों में स्वर में भारीपन (काठिन्य), दाढ़ी-मूँछ आदि निकलते हैं। ~~बालक का स्व~~ विकास इस अवस्था में बालक बालिकाएँ अपनी शारीरिक सौन्दर्य के बारे में पहले से अधिक सजग हो जाते हैं। बालक-बालिकाओं में काम भावना की अधिकतर जागृति हो जाती है। इस अवस्था में बालक और बालिकाओं का विकास लगभग पूर्ण हो जाता है। लड़कों की तीव्रतम वृद्धि का समय 12 से 15 वर्ष है और कन्याओं का 10-14 वर्ष।

38

बालक का यह विकास अभिभावकों तथा अध्यापकों के लिए कई समस्याएँ उत्पन्न कर देता है विशेष रूप से उत्तर बाल्यकाल एवं पूर्व किशोर काल में बालक अपने को शीघ्रता पूर्वक व्यवस्थित नहीं कर पाता। आयु की वृद्धि के साथ लोगों की उससे आशाएँ बढ़ जाती है। लोग उसकी बातों और व्यवहार में प्रौढ़ता की आशा करने लगते है। वह स्वयं चाहता है कि लोग उसकी क्षमता और योग्यता को माने और उसे उत्तरदायित्व का कार्य दिया जाय। ~~इस अवस्था में~~

(2) मानसिक विकास

किशोर के मस्तिष्क का लगभग सभी दिशाओं में विकास होता है। उसमें विशेष रूप से अग्रलिखित मानसिक गुण पाये जाते है।

(1) कल्पना और दिवास्वप्नों की बहुलता।

(2) बुद्धी का अधिकतम विकास।

(3) सोचने, समझने और तर्क करने की शक्ती में वृद्धी

(4) विरोधी मानसिक दशाये,

(5) Kolesnik के शब्दों में " किशोर की मानसिक जिज्ञासा का विकास होता है। अतः वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और अंतराष्ट्रीय समस्याओं में रुचि लेने लगता है। वह इन समस्याओं के संबन्ध में अपने विचारों का निर्माण भी करता है।

Woodworth के शब्दों में "मानसिक विकास 15 से 20

38 वर्ष की आयु में अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँच जाता है। हम इस विकास से संबंधित मुख्य अंगों पर प्रकाश डाल रहे हैं यथा

(1) बुद्धि का अधिकतम विकास

किशोरावस्था में बुद्धि का अधिकतम विकास हो जाता है। यह विकास Hooman के अनुसार 15 वर्ष में John के अनुसार 16 वर्ष में Spearman के अनुसार 14 से 16 वर्ष के बीच में होता है।

(2) मानसिक स्वतंत्रता

किशोर के मानसिक विकास का एक मुख्य लक्षण है मानसिक स्वतंत्रता। वह रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, अन्धविश्वासों और पुरानी परंपराओं को अस्वीकार करके स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने का प्रयास करता है।

(3) मानसिक योग्यताएं

किशोर की मानसिक योग्यताओं का स्वरूप निश्चित हो जाता है। उसमें सोचने, समझने, विचार करने, अंतर करने और समस्या का समाधान करने की योग्यताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। 'मलीस को' के अनुसार किशोर में उच्च मानसिक योग्यताओं का प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है और वह प्रौढ़ों के समान आल

39 प्रयोग नहीं कर पाता है।

(4) ध्यान

किशोर में ध्यान केन्द्रित करने की शक्ति होती है। वह किसी विषय वस्तु पर अपने ध्यान को बहुत देर तक केन्द्रित रख सकता है।

(5) चिंतन शक्ती

किशोर में चिंतन करने की शक्ती होती है। इसकी सहायता से वह विभिन्न प्रश्नों और समस्याओं का हल खोजता है, पर उसके हल साधारणतः गलत होते है। इसका कारण बताते हुए 'रूलिस को' ने लिखा है " किशोर का चिंतन बहुत शक्तिशाली, पक्षपातों और पूर्व निर्णयो से प्रभावित रहता है।

(6) तर्क ~~सरक्ता~~ शक्ती

किशोर में तर्क करने की शक्ती का पर्याप्त विकास हो जाता है। तर्क किये बिना वह किसी बात को स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं होता है।

(7) कल्पना शक्ती

किशोर वास्तविक जगत मे रहते हुए भी ~~संस~~ कल्पना के संसार में विचरण करता है। कल्पना के बाहुल्य के कारण उसमें दिवास्वप्न देखने की प्रवृत्ती उत्पन्न हो जाती है। कुछ किशोर अपनी कल्पना शक्ती को कला, संगीत, साहित्य और रचनात्मक कार्यों के द्वारा व्यक्त करते है। बालकों की अपेक्षा बालिकाओं मे

कल्पना शक्ती अधिक होती है।

(४) रुचियों की विविधता

किशोरावस्था में रुचियों का विकास बहुत तीव्र गती से होता है। बालक और बालिकाओं मे कुछ रुचियाँ समान और कुछ भिन्न होते है जैसे (1) समान रुचियाँ (रेडियो सुनना, टी. वी. देखना आदि) (२) विभिन्न रुचियाँ (~~स्वस्थ~~ बालकों में स्वस्थ बनने और बालिकाओं मे सुन्दर बनने की रुची, बालकों की खेल-कूद ~~की~~ में और बालिका को नृत्य, संगीत आदी देखने में रुची।)

(५) रुची संबन्धी परिवर्तन

किशोरावस्था में रुचि संबन्धी परिवर्तन नीचे लिखे रुप में देखे जा सकते है।

(1) लड़कियाँ अपने बनाव-शृंगार (Make-up) की ओर ध्यान देने लगती है। इसी प्रकार लड़के भी अपने बाल-बनाने, टाई (Tie) बाँधने आदी केलिए काफी समय खर्च करते है। वे अपनी वेषभूषा आदी द्वारा दूसरे को आकर्षित करना चाहता है।

(२) अपने मित्रों तथा सहेलियों के साथ बातचित करने में काफी समय लगाया जाता है। पत्र-मित्र, आदी ~~श~~ शौक भी इसी अवस्था मे होता है।

(३) किशोरावस्था में बालकों की रुची, उपन्यासों, कहानियों, नाटकों, कविताओं तथा साहसिक और यात्रा संबन्धी लेखों में विशेष रुप से होती है।

(४) किशोर को अपने भावी जीवन के संबन्ध में चिंता होती है। इसलिए वह किसी न किसी व्यवसाय के संबन्ध में सोचना प्रारंभ करता है।

(५) संवेगात्मक विकास

संवेगात्मक दृष्टि से भी किशोरावस्था में पूर्ण परिवर्तन होता है। किशोर बालकों के सामने जो भी काम आता है, उसे उलटपलट कर डालना चाहते हैं। धैर्य का उनमें अभाव होता है। संवेगात्मक दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन यह होता है कि किशोर को ज़रा ज़रा सी बात पर क्रोध आ जाता है। कोई कार्य यदि इच्छा के अनुकूल नहीं होता तो उसमें जल्दी क्रोध आने की संभावना है।

(६) धार्मिक या नैतिक आदर्श

किशोरावस्था का बालक अनेक प्रकार के उच्च आदर्शों की प्राप्ति का प्रयास करता है। उसकी श्रद्धा धर्म में बहुत बढ़ जाती है। वह बड़ी सरलता से धार्मिक आदर्शों द्वारा प्रभावित किया जा सकता है। संसार में हम देखते हैं कि बहुत से धार्मिक महापुरुषों तथा संतों ने किशोरावस्था में ही धार्मिक जीवन का व्रत लिया था।

धार्मिक होने के साथ-साथ चरित्र का पूजन भी होता है (शिवाजी, महाराणा प्रताप)। खिलाड़ी तथा

42

सिनेमा के अभिनेता तथा अभिनेत्रियां किशोर के भावे हृदय को शीघ्र ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। माता पिता तथा अभिभावकों आदि का यह कर्तव्य है कि किशोरों की इस विशेषता से लाभ उठाकर उनमें श्रेष्ठ आदर्शों, उच्च चरित्रों, उदार प्रवृत्तियों के प्रति श्रद्धा का भाव जगाकर उनका तथा समाज का उपकार करें।

(6) कामभावना का विकास

किशोरावस्था की विशेषताएँ कामभावना का विकास है। लड़के तथा लड़कियां भिन्न लिंगीय प्रेम करने में तृप्ति का अनुभव करते है। इसलिए कभी कभी किशोर दुराचार का शिकार भी हो जाता है।

किशोरावस्था की समस्याएँ

किशोरावस्था की मुख्य समस्याओं को नीचे लिखे भागों में विभाजित कर सकते है।

(1) कामप्रवृत्ति संबन्धी समस्याएँ
(2) वातावरण के साथ संतुलन स्थापित करने की समस्या
(3) व्यवसायिक समस्या।

(i) कामप्रवृत्ति संबन्धी समस्यायें

आज इस बात को सभी स्वीकार करते है कि किशोर बालकों और बालिकाओं की समस्यायें अधिकतम काम से संबन्ध रखती है। आज भारतीय परिवारों का जैसा वातावरण है, उसके अनुसार कामप्रवृत्ति के प्रति जिज्ञासा की भावना होती है। लेकिन जब उनकी कौतूहल की भावना को घर में शान्त नही किया जाता तो परिणाम यह निकलता है कि वे कामसंबन्धी बातों की जानकारी अन्य साधनों के द्वारा प्राप्त करते है। यह साधन निम्नलिखित है।

(i) मित्रों तथा साथियों से इस संबन्ध में पूछना।
(ii) कामुकतापूर्ण साहित्य का अध्ययन।

(iii) चूँकि इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान अपूर्ण होता है, इसलिये किशोरो का कामसंबन्धी विकास उचित दिशा में नहीं होता। पाठशाला में जो कामसंबन्धी समस्यायें पायी जाती है इनका स्वरूप इस प्रकार है।

(i) काम संबन्धी बातचित करना।
(ii) भिन्न लिंगीय व्यक्ति से बातचित करने की समस्या
(iii) प्रेम की समस्या।

(iv) काम संबन्धी शिक्षा

क्या पाठशाला की विद्यार्थियों को काम संबन्धी शिक्षा दी जाय? इस प्रश्न का

44

उत्तर हाँ अथवा 'ना' में नहीं (दिया जा सकता है) क्योंकि विद्वानों में इसके संबन्ध में मतभेद है।

कुछ विद्वानों का ऐसा कथन है पाठशाला में सामूहिक स्तर पर काम संबन्धी शिक्षा नहीं दी जा सकती है। क्योंकि किशोरावस्था के बालक शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से अलग - अलग होते हैं। इसके विपरीत आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का ऐसा कथन है कि यदि हम शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ तथा सुयोग नागरिक बनाना चाहते है तो उनको सामाजिक दृष्टि से उपयोगी बनाना चाहते हैं तो उनको काम संबन्धी शिक्षा किसी न किसी रूप में अवश्य मिलना चाहिए।

अब यह प्रश्न उठता है कि काम संबन्धी शिक्षा कब दिया जाय? काम संबन्धी शिक्षा कौन दिया जाय? उस प्रश्न के उत्तर में कहा जाता है कि अपने देश में अधिकांश माता-पिता अनपढ़ होते हैं। उन्हें स्वयं काम संबन्धी ज्ञान का पूरा परिचय नहीं होता था। दूसरे बालक भी माता-पिता के सामने काम संबन्धी बातें कहने में शर्माते हैं। इसलिए काम संबन्धी जानकारी देने का उत्तरदायित्व अध्यापक पर पड़ता है।

जो अध्यापक काम संबन्धी शिक्षा देने के नीचे दिया गया है -

५८ 1- संवेगात्मक परिपक्वता

2- सत चरित्रता

3- बड़ी आयुवाला

4- सहनशीलता

5- विनोदी स्वभाववाला।

6- सुखी घरेलू जीवन।

ii) वातावरण के साथ संतुलन स्थापित करना :-

किशोर बालकों का वातावरण आमतौर पर दो प्रकार के होते हैं - 1) घरेलू वातावरण 2) पाठ्यशाला संबन्धी वातावरण।

1- घरेलू वातावरण :-

पहले बता या चुके हैं कि किस प्रकार साधारण बालकों का बौद्धिक स्तर ऊँचा होना पर किशोर उनके साथ रहना नहीं चाहता था। प्रौढ व्यक्ति जिनके साथ वह रहना चाहते हैं उनको अबोध समझते हैं। इस कारण मन शोक से भर उठता है और वातावरण के साथ संतुलन बनाया रखना उनके लिए कठिन हो जाता है इस बात को ध्यान में रखते हुए घरवालों को उसकी समस्या समझने का प्रयत्न करना चाहिए। उसके साथ स्नेह और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए।

2) पाठ्यशाला संबन्धी वातावरण :-

पाठ्यशाला में अपने आयु से छोटे तथा अपने आयु से बड़े दो प्रकार के विद्यार्थियों दोनों

46 उनको स्वीकार नहीं किया जाता है। अध्यापकों को चाहिए वे किशोरावस्था की बालकों को इसी कठिनाई समझे और इसके यथोचित व्यवहार करे।

व्यावसायिक समस्या :-

इस बात का स्पष्टीकरण हो चुके है कि किशोर अबोध बालक होता है और जीवन की समस्या बल्की भाँती समझ सकता है। शिक्षा के समाप्ती के बाद व्यक्ति आत्माश्रि बन सके। आज इस समस्या देश कोलिए महत्वपूर्ण स्थान रहती थी। देश में बेकारों की संख्या देखकर किशोर भी अपने भावि जीवन कोलिए हो उठता है। इसकी जितनी ही स्वप्न कभी साकार हो सकता जब वह किसी न किसी योग्य व्यावसायिक को अपना सके। परंतु यह तभी संभव हो सकता है जब की पाठशाला मे उचित व्यावसायिक निर्देशन की व्यवस्थाओं और पाठ्यक्रम में उस प्रकार के विषयों का आयोजन हो जिनके आधार पर वह आगे जाकर किसी न किसी व्यवसाय को अपना सके।

पन

व्यक्तित्व

(५)

व्यक्तित्व का स्वरूप और विकास व निर्धारण :-

~~व्याप~~ यद्यपि व्यक्तित्व शब्द बहुत व्यापक है - और व्यक्ति शब्द का प्रयोग हम भिन्न अर्थ तो है किया करते हैं राम का व्यक्तित्व अच्छा है। तब प्रायः, उसका तात्पर्य यह होता है कि राम की शारीरिक रचना बड़ी ही सुन्दर है। वह देखने में स्वस्थ, सुन्दर और युवा है। यह सब अच्छे व्यक्ति के गुण समझना है। चूंकि यह है। यह तो सत्य है कि व्यक्तित्व के अंतर यही सभी बातें शामिल है किंतु कुछ शेष बात है और भी है। जो हमारे कहने है कि "राम का व्यक्तित्व अच्छा है" में अंतरनिहित है।

व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ती :-

व्यक्तित्व अंग्रेजी के Personality शब्द का रूपांतर है। अंग्रेजी की इस शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के Persona शब्द से हुई है जिसका अर्थ है नकाब (mask)। यूनानी लोग नकाब पहनकर मंच पर अभिनय करता है। ताकि दर्शक गण यह न जान सके कि अभिनय करने वाला कौन है - दास, विदूषक, राजकुमार या राजनर्तकी।

व्यक्तित्व की परिभाषा :-

मन :- व्यक्तित्व की परिभाषा व्यक्ति के ढाँचे, व्यवहार की विधियों, रुचियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं

48 और कुशलता के सबसे विशिष्ट एकीकरण के रूप में की जा सकती है।

ड्रेवर :-

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक मानसिक और नैतिक सामाजिक गुणों के सु-संगठित और गत्यात्मक संगठन के लिए किया जाता है। जिनसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन के आदान-प्रदान में व्यक्त करता है।

व्यक्तित्व की विशेषताएँ :-

1- आत्म-चेतना

2- सामाजिकता

3- सामंजस्यता

4- निर्देशक लक्ष्य प्राप्ती

5- दृढ इच्छा शक्ति

6- शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य

7- एकता या एकीकरण

8- विकास की निरंतरता।

(1) <u>आत्म चेतना</u>

व्यक्तित्व की पहली और मुख्य विशेषता है आत्मचेतना। इस विशेषता के कारण मानव को सब जीवधारियों में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया ~~जाता~~ जाता है। और उसके व्यक्तित्व की ~~अभिव्यक्ति~~ उपस्थिति को स्वीकार किया जाता है।

(2) <u>सामाजिकता</u>

व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है सामाजिकता। समाज से अलग मानव और उसके व्यक्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव में आत्मचेतना का विकास तभी होता है जब वह समाज के अन्य व्यक्तियों के संपर्क में आकर क्रिया और अंतःक्रिया करता है। इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। अतः व्यक्तित्व में सामाजिकता की विशेषता होना अनिवार्य है।

(3) <u>सामंजस्य</u>

व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता है सामंजस्यता। व्यक्ति को न केवल बाह्य वातावरण से वरन अपने स्वयं के आंतरिक जीवन से भी सामंजस्य करना पड़ता है। सामंजस्य करने के कारण उसके व्यवहार में परिवर्तन होता है। फलस्वरूप उसके

व्यक्तित्व में विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यही कारण है कि चोर, डाकिया, डॉक्टर, आदि के व्यवहार और व्यक्तित्व में अंतर मिलता है।

(5) निर्देशित लक्ष्य प्राप्ति

व्यक्तित्व की पाँचवीं विशेषता है निर्देश्य लक्ष्य प्राप्ति। मानव के व्यवहार का सदैव एक निश्चित उद्देश्य होता है। और वह सदैव किसी न किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संचालित किया जाता है। उसके व्यवहार और लक्ष्यों से अवगत होकर हम उसके व्यक्तित्व का सहज ही ~~अनु~~ अनुमान लगा सकते हैं।

(6) दृढ़ इच्छा शक्ति

व्यक्तित्व की पाँचवीं विशेषता है दृढ़ इच्छा शक्ति। यही शक्ति व्यक्ति को जीवन की कठिनाइयों से संघर्ष करके अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने की क्षमता प्रदान करती है।

(7) शारीरिक ~~एवं~~ व मानसिक स्वास्थ्य

व्यक्तित्व की ~~छ~~ छठवीं विशेषता है यह मनुष्य मनोशारीरिक प्राणि है। अतः इसके अच्छे व्यक्तित्व के लिए अच्छे शारीरिक और

मानसिक स्वास्थ्य का होना आवश्यक है।

(७) एकता व एकीकरण

व्यक्तित्व की सातवीं विशेषता है एकता और एकीकरण। जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर का कोई अवयव अकेला कार्य नहीं करता है, उसी प्रकार व्यक्तित्व का कोई तत्व अकेला कार्य नहीं करता है। ये तत्व हैं शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि। व्यक्तित्व के इन सभी तत्वों में एकता व एकीकरण होता है।

(८) विकास की निरंतरता

व्यक्तित्व की अंतिम किन्तु महत्वपूर्ण विशेषता है विकास की निरंतरता। उसके विकास में कभी स्थिरता नहीं आती है। जैसे-जैसे व्यक्ति के कार्यों, विचारों, अनुभवों, स्थितियों में आदि परिवर्तन होता जाता है, वैसे वैसे उसके व्यक्तित्व के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। विकास की यह निरंतरता शैशवावस्था से जीवन के अंत तक चलती रहती है। इसलिए Garrison ने लिखा है "व्यक्तित्व निरंतर निर्माण की क्रिया में रहता है।"

52

व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारक

(i) वंशानुक्रम का प्रभाव

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तित्व के विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है। उदा: Francis Galton ने प्रमाणित किया है कि वंशानुक्रम के कारण ही व्यक्तियों के शारीरिक और मानसिक लक्षणों में भिन्नता दिखाई देती है। Skinner के अपने शब्दों में कह सकते हैं, मनुष्य का व्यक्तित्व स्वाभाविक विकास का परिणाम नहीं है। उसे अपने माता-पिता से कुछ निश्चित शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और व्यावसायिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

(२) शारीरिक रचना का प्रभाव

शारीरिक रचना के अंतर्गत शरीर के अंगों का पारस्परिक अनुपात, शरीर की लंबाई और भार, नेत्रों और बालों का रंग, मुखाकृति आदि आते हैं। ये सभी किसी न किसी रूप में व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं।

53

(3) मानसिक योग्यता का प्रभाव

व्यक्ति में जितनी अधिक मानसिक योग्यता होती है, उतना ही अधिक वह अपने व्यवहार को समाज के आदर्शों और प्रतिमानों के अनुकूल बनाने में सफल होता है। परिणामतः उसके व्यक्तित्व का उतना ही अधिक विकास होता है। उसकी तुलना में अल्प मानसिक योग्यता वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास कहीं कम होता है।

(4) विशिष्ट रुचि का प्रभाव

मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास उस सफलता के अनुपात में होता है, जो उसे किसी कार्य को करने से प्राप्त होती है। इस सफलता का मुख्य आधार है उस कार्य में उसकी विशिष्ट रुचि कला या संगीत में विशिष्ट रुचि लेनेवाला व्यक्ति ही कलाकार या संगीतज्ञ के रूप में उच्चतम स्थान पर पहुंच सकता है।

(5) भौतिक वातावरण का प्रभाव

भौतिक या प्राकृतिक वातावरण अलग-अलग देशों और प्रदेशों के निवासियों के व्यक्तित्व पर अलग अलग तरह की छाप लगाता है। यही कारण है कि मरुस्थल में निवास करने वाले 'अरब' और हिमप्रदेश में रहने वाले 'एस्किमो' लोगों की आदतें, शारीरिक बनावटें, जीवन की विधियां, रंग और

स्वास्थ्य आदि में स्पष्ट अंतर मिलता है।

5-4

(6) सामाजिक वातावरण का प्रभाव

बालक जन्म के समय पशु होता है। उसे न बोलना आता है, न कपड़े पहनना, उसका न कोई आदर्श होता है और न वह किसी प्रकार का व्यवहार करना ही जानता है। पर सामाजिक वातावरण के संपर्क में रहकर उसमें धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगता है। उसे अपनी भाषा, रहन-सहन के ढंग, खाने-पीने की विधि, दूसरों के साथ व्यवहार करने के प्रतिमान, धार्मिक एवं नैतिक विचार आदि अनेक बातें समाज से प्राप्त होती हैं। इस प्रकार समाज उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

(7) सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव

समाज व्यक्तित्व का निर्माण करता है। संस्कृति उसके स्वरूप को निश्चित करती है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी मान्यताएँ, रीति-रिवाज, रहन-सहन की विधियाँ, धर्म, कर्म आदि होते हैं। मनुष्य जिस संस्कृति में जन्म लेता है, जिसमें उसका लालन-पालन होता है, उसी के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का स्वरूप निश्चित होता है। इस प्रकार उसके व्यक्तित्व पर उसकी संस्कृति की अमिट [illegible] जाती है।

(8) परिवार का प्रभाव

व्यक्तित्व के निर्माण का कार्य परिवार में आरंभ होता है। यदि बालक को परिवार में प्रेम, सुरक्षा और स्वतंत्रता का वातावरण मिलता है तो उसमें साहस, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता आदि गुणों का विकास होता है। इसके विपरीत यदि उसके प्रति कठोरता का व्यवहार किया जाता है ~~तो~~ और उसे छोटी-छोटी बातों के लिए ~~डांट~~ डाँटा जाता है तो वह कायर और असत्यभाषी बन जाता है। परिवार की उत्तम या निम्न आर्थिक स्थिति का भी उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है।

(9) विद्यालय का प्रभाव

व्यक्तित्व के विकास पर विद्यालय की सब बातों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। जैसे पाठ्यक्रम, अनुशासन, शिक्षक छात्र संबन्ध, छात्र-छात्र संबन्ध, खेल-कूद आदि। 'क्रो व क्रो' के शब्दों में "बालक के विकसित होनेवाले व्यक्तित्व पर विद्यालयों के अनुभवों का प्रभाव उससे कहीं अधिक पड़ता है, जितना की कुछ शिक्षकों का विचार है।"

(10) ~~अ~~ प्रभावित करनेवाले अन्य कारक

व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करनेवाले कुछ अन्य कारक है।

(1) बालक का पड़ोस, समूह और परिवार की इकलौती संतान होना।

56

(2) बालक के शारीरिक एवं मानसिक दोष, संवेगात्मक असंतुलन, और माता की मृत्यु के कारण प्रेम का अभाव है

(3) मेला, सिनेमा, आराधना स्थान, धार्मिक स्थान, जीवन की विशिष्ट परिस्थितियाँ और सामाजिक स्थिति एवं कारण कार्य।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व के विकास पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव के समग्र रूप का अध्ययन करके ही व्यक्तित्व के विकास की वास्तविक परिस्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता है।

व्यक्तित्व का मापन (Measurement of personality)

व्यक्तित्व को अनेक गुणों या लक्षणों का संगठन माना जाता है। इन गुणों के कारण कोई मनुष्य उत्साहपूर्ण, तो कोई उत्साहहीन, कोई एकांत प्रिय, कोई चिंता मुक्त, तो कोई चिंता ग्रस्त होता है। Boring के अनुसार "व्यक्तित्व मापन की सहायता से इन गुणों का ज्ञान प्राप्त करके चार लाभप्रद कार्य किये जा सकते हैं।"

- (1) व्यक्तित्व के विकास से संबंधित समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

(2) व्यक्ति को अपनी कठिनाइयों का निवारण करने के उपाय बताये जा सकते हैं।

(3) व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप में सामंजस्य

करने में सहायता दी जा सकती है।

(5) विभिन्न पदों के लिए व्यक्तियों का चुनाव किया जा सकता है।"

उक्त लाभप्रद कार्यों को व्यवहारिक रूप प्रदान करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का मापन करने के लिए अनेक विधियों या परीक्षणों का निर्माण किया गया है।

व्यक्तित्व मापन की विधियाँ

(1) प्रश्नावली विधि
(2) जीवन इतिहास विधि
(3) साक्षात्कार विधि
(4) क्रिया परीक्षण विधि
(5) परिस्थिति परीक्षण विधि
(6) मानदंड मूल्यांकन विधि
(7) व्यक्तित्व परिसूची विधि
(8) प्रक्षेपण विधि
(9) अन्य विधियाँ व परीक्षण।

(1) प्रश्नावली विधि

इस विधि में कागज पर छपे कुछ कथनों या प्रश्नों की सूची होती है। जिनके उत्तर हाँ या नहीं पर निशान लगाकर लिखकर देने पड़ते हैं। इसलिए इस विधि को कागज पेन्सिल परीक्षण (Paper Pencil Test) भी

करते हैं। प्राप्त उत्तरों की सहायता से व्यक्तित्व का मापन किया जाता है। इस प्रकार यह विधी प्रश्नों के उत्तरों की सहायता से व्यक्तित्व मापन की विधी है।

प्रश्नावली विधि का प्रयोग निम्नांकित तीन कार्यों मे किया जा सकता है।

(1) व्यक्ति की चिंताओं, परेशानियों आदि की क्रमबद्ध सूचना प्राप्त करना।

(2) व्यक्ति के आर्थिक, धार्मिक, और सामाजिक विचारों और विश्वासों की जानकारी प्राप्त करना।

(3) व्यक्ति की कला, संगीत, साहित्य, पुस्तकों, व्यवसायों, खेलकूदों आदि में रुचि का ज्ञान प्राप्त करना।

इस विधि का गुण

(1) इस विधी में समय की बचत होती है, क्योंकि अनेक व्यक्तियों की परीक्षा एक साथ की जा सकती है।

(2) इस विधी में एक प्रश्न के अनेक उत्तर मिलने के कारण व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

दोष

(1) इस विधी में व्यक्ती सब प्रश्नों के उत्तर न देकर केवल कुछ ही प्रश्नों के उत्तर दे सकता है।

59 (4) इस विधि में व्यक्ति कभी कभी प्रश्नों को भली प्रकार से न समझने के कारण ठीक उत्तर न दे सकता है।

(2) जीवन इतिहास विधि

इस विधि का प्रयोग प्राचीन यूनानी दार्शनिकों के समय से चला आ रहा है। आधुनिक काल में इस विधि अपराधी बालकों और व्यक्तियों को समझने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। Broadener and murphy के मत में उन्हें 'औपचारिक विधि' की संज्ञा देते हुए लिखा है- "जीवन इतिहास विधि में व्यक्ति का जैसा कि वह आज है क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है।"

इस विधि का प्रयोग करते समय अध्ययन किये जानेवाले व्यक्ति के जीवन के संबन्ध में अग्रांकित सूचनायें प्राप्त करनी चाहिये।

(1) व्यक्ति के सामाजिक संबन्ध
(2) " की व्यक्तिगत विभिन्नतायें
(3) " का दूसरे लोगों के साथ सामन्जस्य
(4) " की रुचियाँ
(5) " के मातापिता और निकट संबन्धियों का अध्ययन।

(क) इस विधि का मुख्य दोष यह है कि व्यक्ति और इससे संबन्धित लोग अनेक बातों को छिपा

लेते हैं। वह कुशल अध्ययन करता विभिन्न स्त्रोतों से सूचनाएँ प्राप्त करके कठिनाई पर विजया विजय प्राप्त कर लेता है।

(ई) साक्षात्कार विधि (Interview method)

व्यक्तित्व मापन की इस मौखिक विधि का प्रयोग शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं को अध्ययन करने के लिए किया जाता है। Garret के अनुसार इस विधि के दो स्वरूप हैं। औपचारिक और अनौपचारिक।

औपचारिक विधि में साक्षात्कार करने वाला व्यक्ती से नाना प्रकार के प्रश्न पूछता है। इस विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जब बहुत से अम्मीदवारों से एक या कुछ को किसी कार्य या पद के लिए चुना जाता है।

अनौपचारिक विधि में साक्षात्कार करने वाला कम से कम प्रश्न पूछता है और व्यक्ती को अपने बारे में अधिक से अधिक बातें स्वयं बताने का अवसर देता है। इस विधि का प्रयोग व्यक्ती की समस्याओं, कठिनाइयों, परेशानियों आदि को जानकर उनका निवारण करने के उपाय बताने के लिए किया जाता है।

(घ) क्रिया परीक्षण विधि (Behaviour test method)

इस विधि को व्यवहार परीक्षण विधि भी कहते हैं। इस विधि का निर्माण द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेज और अमेरिकी मनोवैज्ञानिकों ने सेना के अफसरों (officer) का चुनाव करने के लिए किया था। इस विधि द्वारा यह परीक्षण किया जाता है कि व्यक्ति जीवन की वास्तविक परिस्थिति में किस प्रकार का कार्य या व्यवहार करता है। वह आत्मप्रदर्शन करना, नेतृत्व करना, समूह के लिए कार्य करना या किस प्रकार का अन्य कार्य करना चाहता है। इस प्रकार यह विधि व्यक्तिगत विभिन्नताओं का अध्ययन करने के लिए अति उपयोगी है।

(ङ) परिस्थिति परीक्षण विधि (Situation test method)

इस विधि वास्तव में व्यवहार परीक्षण विधि का ही एक अंग है। इस विधि में व्यक्ति को किसी विशेष परिस्थिति में रखकर उसके व्यवहार या किसी विशेष गुण की जाँच की जाती है। May ने ~~अपने पुस्तक (लिखा है)~~ अपनी पुस्तक में उदाहरण दिया है, उन्होंने इसका प्रयोग बालकों की ईमानदारी की जाँच करने के लिए किया। उन्होंने एक कमरे में एक संदूक रख दिया और कुछ बालकों को थोड़े-थोड़े सिक्के दिए। उन्होंने बालकों को आदेश दिया कि वे सिक्कों को संदूक में डाल आएँ। परीक्षण के अंत में संदूक

के सिक्कों को गिनने से ज्ञात हुआ कि कुछ बालकों ने अपने सिक्कों को उसमें नहीं डाला था।

6. मानदण्ड मूल्यांकन विधि :-

इस विधि में व्यक्ति के किसी विशेष गुण या कार्यकुशलता का मूल्यांकन उसके संपर्क में रहने वाले लोगों से करवाया जाता है। उस गुण को पाँच या अधिक श्रेणियों में विभाजित कर दिया जाता है और मतदाताओं से उनके संबन्ध में अपना विचार व्यक्त करने का अनुरोध किया जाता है। जिस कोटि को सबसे अधिक मत प्राप्त होते हैं और व्यक्ति को इसी प्रकार का समझा जाता है।

7. व्यक्तिगत परिसूचि विधि :-

इस विधि में व्यक्ति के जीवन से संबन्धित विभिन्न प्रकार के प्रश्नों या कथनों की सूचियाँ तैयार की जाती है। व्यक्ति उनके उत्तर हाँ या नहीं में देकर परीक्षण करता के समक्ष स्वयं अपना मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। इसलिए इस विधि को स्व मूल्यांकन विधि भी कहते हैं। बालक की पारिवारिक स्थिती और या सामंजस्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उससे कुछ जानेवाले कुछ प्रश्नों के उदाहरण दृष्टव्य है।

1- क्या आपका परिवार आप के साथ सदैव अच्छा व्यवहार करता है?

64 2- क्या आपका आपके परिवार के साथ रहना अच्छा लगता है ?

3- क्या आप के माता - पिता आप पर कड़ा नियंत्रण रखते हैं ?

4- प्रक्षेपण विधि :-

प्रोजक्ट का अर्थ है प्रक्षेपण करना या फेंकना सिनेमा हाल के किसी के भाग में बैठा हुआ व्यक्ति प्रोजक्टर के सहायता से फिल्म के चित्रों को करते पर प्रोजक्टर करता है। वहाँ बैठे हुए दर्शकगण उन चित्रों को विभिन्न दृष्टिकोण पर देखते है उदाहरणार्थ - अभिनेत्री के नृत्य के समय कलाकार उसके शरीर की गतियों को नवयुवक उसके सौन्दर्य को, तरुण बालिका उसके श्रृंगार को और सामान्य मनुष्य उसकी विभिन्न मुद्राओं को विशेष रूप से देखता। उसका अभिप्राय यह है कि सब लोग एक व्यक्ति या वस्तु को समान रूप से न देकर देखकर अपने व्यक्तित्व के गुणों या मानसिक अवस्ताओं के अनुसार देखते हैं। मानव स्वभाव की इस विशिष्टता से लाभ उठाकर मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व मापन के लिए प्रक्षेपण विधि का निर्माण किया है। शमनर के अनुसार - "प्रक्षेपण विधि - उद्दीपकों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसके व्यक्तित्व के स्वरूप का वर्णन करने का साधन है"।

प्रक्षेपण विधि के आधार पर अनेक -

[illegible] [illegible] के [illegible] [illegible]।

2. [illegible] [illegible] वाला परीक्षण

3. प्रासंगिक अंतर्बोध परीक्षण

4. रोशा स्याही धब्बा परीक्षण :-

रोर्शा स्याही धब्बा का प्रक्षेपण परीक्षण सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला व्यक्तित्व परीक्षण है। इसका निर्माण स्विट्जरलैण्ड के विख्यात मनोविज्ञान के चिकित्सक हरमन रोर्शा ने 1921 में किया था। इस परीक्षण में स्याही का धब्बा दस कार्ड का प्रयोग किया जाता है। इन कार्डों में से पाँच बिल्कुल काले हैं। दो काले और लाल हैं और तीन अनेक रंगों के हैं।

परीक्षण विधि :-

जिस मनुष्य के व्यक्तित्व का परीक्षण किया जाता है उसे एक-एक कार्ड निश्चित समय के अंतर के बाद एक करके दिखाए जाते हैं। फिर उससे पूछा जाता है कि इसे प्रत्येक कार्ड के धब्बों में क्या दिखाई दे रहा है। परीक्षार्थी धब्बों में जो भी आकृतियाँ देखता है उनको बताता है और परीक्षक उसके उत्तरों को सविस्तार लिखता है। एक बार दिखाए जाने के बाद कार्डों को परीक्षार्थी को दोबारा दिखाया जाता है। इस

55 बाद उससे पूछा जाता है कि धब्बों में बताई गयी आकृतियों को उसने कार्डों में किस स्तरों पर देखा है।

विश्लेषण :-

परीक्षक परीक्षार्थी के उत्तरों का विश्लेषण निम्नांकित चार बातों के आधार पर करता है।

1- स्थान :-

इसमें यह देखा जाता है कि परीक्षार्थी की प्रतिक्रिया पूरे धब्बे के प्रति थी, या उसमें एक भाग के प्रति।

2- निर्धारक गुण :-

इसमें यह जाता है कि परीक्षार्थी की प्रतिक्रिया धब्बे की बनावट के कारण की या उसके रंग के कारण या उसमें देखी जाने वाली किसी आकृति की गति के कारण।

3- विषय :-

इसमें यह देखा जाता है कि परीक्षार्थी ने धब्बों में किसकी आकृतियाँ देखी. व्यक्तियों की, पशुओं की वस्तुओं की, प्रकृतिक दृश्य की रचना या अन्य किसी की।

4- समय व प्रतिक्रियाएँ :-

इसमें यह देखा जाता है कि परीक्षार्थी ने कितने समय तक प्रतिक्रिया की इस प्रकार की।

उपयोगिता :-

जिस परीक्षण द्वारा इसकी व्यक्ति की बुद्धि सामाजिकता अनुकूलन संवेगात्मक ~~अनुकूलन~~ संतुलन व्यक्तिगत का विभिन्नता आदि का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है।

अन्य परीक्षण

(1) निरीक्षण विधि :-

इस विधि में परीक्षण कर्ता विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।

(2) आत्मकथा विधि :-

इस विधि में परीक्षार्थी से उसके जीवन से संबन्धित किसी विषय पर निबन्ध लिखने के लिए कहा जाता है।

(3) स्वतंत्र संपर्क विधि

इस विधि में परीक्षण कर्ता परीक्षार्थी से अति घनिष्ट संबन्ध स्थापित करके उसके विषय में विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त करते हैं।

(4) शारीरिक परीक्षण विधि :

इस विधि में विभिन्न यंत्रों से व्यक्ति की विभिन्न क्रियाओं का मापन किया जाता है। यह यंत्र हृदय, मस्तिष्क, श्वास, माँसपेशियों आदि की क्रियाओं का मापन करते हैं।

(5) चित्र कहानी परीक्षण :

इस परीक्षण में बीस चित्रों की सहायता से किशोर बालकों और बालिकाओं के व्यक्तित्व का अध्ययन

से किया जाता है।

(6) मौखिक प्रक्षेपण परीक्षण :-

इस परीक्षण में कहानी कहना, कहानी पूरी करना और इस प्रकार की अन्य मौखिक क्रियाओं द्वारा परीक्षण किया जाता है।

Lesson:-

68

वंशानुक्रम और वातावरण

वंशपरंपरा क्या है?

~~मनोवैज्ञानिक~~ मनोवैज्ञानिकों और जीव शास्त्रियों का कथन है कि वंशपरंपरा में शरीर और बुद्धि संबंधी वे सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं, जो बालक या बालिका को अपने माता पिता से प्राप्त होती हैं। ये सभी विशेषताएँ "जीन्सों" के माध्यम से प्राप्त होती हैं। यदि माता पिता में से एक का रंग गोरा है, दूसरे का रंग काला है तो बालक या बालिका का रंग काला या गोरा भी हो सकता है। व्यक्ति के शरीर का रंग, उसकी शारीरिक रचना, उसकी लंबाई, उसकी आँखें, उसकी नाक, उसका माथा, ये सब वंशपरंपरा से निर्धारित होते हैं। इन पर वातावरण का प्रभाव नाम के बराबर होते हैं। वंशपरंपरा को ही वंशानुक्रम, आनुवंशिकता, आदि नामों से जाना जाता है।

वंशपरंपरा की परिभाषा

वंशपरंपरा के भाव को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है।

वीलस हायजर "वस्तुओं की अपने समान प्रजनन करने की प्रवृत्ति को वंशपरंपरा कहते हैं।"

69 जाइम्स रोज - " एक संतति द्वारा अगली संतति में गुणों का संक्रमण वंशानुक्रम है।"

जाइम्स ड्रेवर - " माता पिता की शारीरिक तथा मानसिक विशेषताओं का संतानों में संवाहन होना ही वंशानुक्रम है।"

वंशपरंपरा की प्रक्रिया

जीव विज्ञान के अनुसार व्यक्ति के शरीर का निर्माण कोशों द्वारा होती है। स्त्री पुरुष के सहवास के समय पुरुष का शुक्र कोश स्त्री के बीज कोश से मिल जाता है। इस क्रिया को उर्वरीकरण कहते हैं। गर्भावस्था में भ्रूण की रचना केवल एक निषेचित या उर्वरीकृत बीजकोश द्वारा होता है। प्रत्येक उर्वरीकृत बीजकोशों में वंशसूत्रों के 14 जोड़े होते हैं। इनके आधे वंशसूत्र पिता के और आधे माता के होते हैं। प्रत्येक वंशसूत्र में बहुत से अदृश्य कण होते हैं। इसे पित्र्यैक कहते हैं। इन पित्र्यैकों में (Genes) माता पिता के गुण होते हैं। इन पित्र्यैकों के द्वारा बालक अपना रूप, रंग, तथा अन्य शारीरिक और मानसिक विशेषताएं प्राप्त करता है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि पित्र्यैकों द्वारा ही बालक का वंशपरंपरा निर्धारित होती है।

बालक के विकास पर वंशपरंपरा का प्रभाव

बालक के विकास पर उन सब बातों का प्रभाव पड़ता है जो वह वंशपरंपरा से हासिल करता है (प्राप्त करना) | इस प्रभाव को इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

(i) लिंग भेद

पितृकों भी इस बात को निश्चित करते है कि नवीन जीव पुरुष होगा या स्त्री ये पितृक वंशसूत्रों मे पाये जाते हैं। स्त्री में केवल 'अ' वंशसूत्र होते है, और 'ब' वंशसूत्र बिलकुल नही होते हैं। इसलिए वह जितने बीज उत्पन्न करती है उसमें केवल 'अ' वंशसूत्र का जोड़ा होता हैं। पुरुष के शुक्राणु में 'अ' तथा 'ब' दोनो प्रकार के शुक्राणु होते है। इन्हें हम 'अ' 'ब' का जोड़ा कह सकते हैं। शिशु का लिंग इस बात पर निर्भर करता है कि पुरुष के 'ब' और 'अ' शुक्राणुओं में कौन सा सबसे पहले स्त्री के बीज के साथ संयुक्त होता है। 'अ' और 'अ' वंशसूत्र जब आपस मे मिलते हैं तो लड़की पैदा होती है। इसके विपरीत यदि 'अ' 'अ'

71 'ब' वंशसूत्र आपस में मिलते हैं तो लड़का पैदा होता है। इस लिंग भेद बालक के व्यक्तित्व पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

(२) शारीरिक प्रभाव

व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के दैहिक लक्षण पाये जाते हैं। उनके रूप रंगों में, बालों के रंग में, मुख मंडल की रचना में, नाक, कान, नेत्र, आदि की बनावट में अलग अलग विशेषताएँ वंशपरंपरा के कारण पायी जाती हैं।

(३) बुद्धि पर प्रभाव

बुद्धि पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कुछ परिवारों का अध्ययन किया है, वह नीचे लिखे हैं।

(क) कालिकाका [illegible] परिवार

गोडर्ड ने कालिकाका परिवार का अध्ययन किया। मार्टिन कालाक कालिकाका एक सैनिक था। उसका संबन्ध एक मंदबुद्धि महिला से हो गया। इस स्त्री से जो वंश चला उसमें 143 मंदबुद्धि, 36 जारसंतान, 33 वेश्यायें, 32 शराबी, और 11 अपराधी व्यक्ती थी। युद्ध के बाद उसने एक सामान्य बुद्धि, सचरित्र महिला से विवाह किया। इस महिला से जो वंश चला उसमें 496

व्यक्ति थे। इनमें कई प्रतिभाशाली वकील और 72
राज्याधिकारी बने।

(b) ज्यूक परिवार

डग्डेल ने ज्यूक परिवार का अध्ययन किया। ज्यूक एक मछुआ था। उसके लड़कों ने निम्न जाति और कुलहीन महिलाओं से विवाह किया। परिणाम स्वरूप सभी बच्चे प्रायः चोर, उचक्के (बिकारी), अस्वस्थ, व्यभिचारी और अपराधी पैदा हुए।

(c) एडवर्ड परिवार

विनशिप ने एडवर्ड परिवार का अध्ययन किया। उसने अच्छे परिवार की महिला से विवाह किया। उससे जो वंश चला उसमें सभी व्यक्तियों ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठा प्राप्त की।

इन तीनों अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य की प्रतिभा और गुणों का निश्चय वंशपरंपरा से प्राप्त होता है।

वातावरण का अर्थ व परिभाषा

Q3 (ii) वातावरण के लिए पर्यावरण शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है परि + आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर एवं आवरण का अर्थ है ढकनेवाला। इस प्रकार पर्यावरण या वातावरण वह वस्तु है जो चारों ओर से ढके हुए है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के चारों ओर जो कुछ है वह उसका वातावरण है। इसमें वे सब तत्व सम्मिलित किए जा सकते हैं, जो व्यक्ति के जीवन और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। हम वातावरण के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ दे रहे हैं।

वुडवर्थ :- " वातावरण में वे सब बाह्य तत्व आ जाते हैं जिन्होंने व्यक्ति को जीवन आरंभ करने के समय से प्रभावित किया है। "

एनास्टसी :- " वातावरण शब्द का प्रयोग इन सब बाह्य शक्तियों, प्रभावों और दशाओं का सामूहिक रूप से वर्णन करने के लिए किया जाता है, जो जीवित प्राणियों के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, बुद्धि विकास और परिपक्वता पर प्रभाव डालते हैं। "

रॉस :- " वातावरण वह बाहरी शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है। "

बालक पर वातावरण का प्रभाव प्रकार

74

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने वातावरण के महत्व के सम्बन्ध में अनेक अध्ययन और परीक्षण किये हैं इनके आधार पर उन्होंने सिद्ध किया है कि बालक के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू पर भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का व्यापक प्रभाव पड़ता है।

~~सामान्यतः~~

सामान्यतः वातावरण के तीन अंग हैं।
(1) पारिवारिक, (2) विद्यालय और (3) सामाजिक।

(1) पारिवारिक वातावरण

इसका सम्बन्ध उन सब बाह्य प्रभावों से है जो बालक और बालिकाओं पर उसके माता पिता भाई-बहन, तथा अन्य संबन्धियों द्वारा अंकित होता रहता है।

(2) विद्यालय वातावरण

इसमें वे सब बाह्य प्रभाव आ जाते हैं जो विद्यालय द्वारा, अध्यापकों द्वारा तथा अन्य साथियों द्वारा बालक अथवा बालिका पर अंकित होते रहते हैं।

76

(3) सामाजिक वातावरण

इसका अभिप्राय वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल, इत्यादि बाह्य प्रभाव, बालक अथवा बालिका समाज द्वारा ग्रहण करता है।

बालक पर वातावरण का प्रभाव

(1) शारीरिक अंतर पर प्रभाव

Franz Boans का मत है कि "विभिन्न प्रजातियों के शारीरिक अंतर का कारण वंशानुक्रम न होकर वातावरण है।" उसने अनेक उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि ~~जब जापानी और~~ जापानी और यहूदी अनेक पीढ़ियों से निवास कर रहे हैं। उनकी लंबाई भौगोलिक वातावरण के कारण बढ़ गई है।

(2) मानसिक विकास पर प्रभाव

Gordon का मत है कि "उचित सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण न मिलने पर मानसिक विकास की गति धीमी हो जाती है।" उसने यह बात नदियों के किनारे रहनेवाले बच्चों का अध्ययन करके सिद्ध की। इन बच्चों का वातावरण गाँव और समाज के अच्छे प्रभावों से दूर था।

(3) बुद्धि पर प्रभाव

Candolle का मत है कि "बुद्धि के विकास में वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण का प्रभाव कहीं

76 अधिक पड़ता है। इसने यह बात ६६२ विद्वानों का अध्ययन करके सिद्ध की।

(५) व्यक्तित्व पर प्रभाव

Cooley का मत है कि व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है। इसने सिद्ध किया है कि कोई भी व्यक्ति उपयुक्त वातावरण में रहकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण करके महान बन सकता है।

(६) बालक पर बहुमुखी प्रभाव

वातावरण बालक के शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक आदि सभी अंगों पर प्रभाव डालता है। इसकी पुष्टि एक जंगली बालक के उदाहरण से की जा सकती है। इस बालक को जन्म के बाद ही भेड़िये उठा ले गये थे। और उसका पालन पोषण जंगली पशु के बीच में हुआ था। कुछ शिकारियों ने सन् 1799 ई में पकड़ लिया। उस समय उसकी आयु 11 या 12 वर्ष की थी। उसकी आकृति पशुओं की सी थी। और वह उनके समान हाथों पैरों से चलता था। वह कच्चा मांस खाता था उसमें मनुष्य के समान बोलने और विचार करने की शक्ति नहीं थी। उसको मनुष्य के समान सभ्य और

शिक्षित बनाने के सब प्रयास विफल हो गये।

नर एक बच्चा जितने अधिक समय उत्तम पर्यावरण में रहता है, उतना ही अधिक इस पर्यावरण की ओर प्रवृत्त होता है। यदि एक बच्चा चतुर माता पिता के साथ अधिक समय तक रहता है तो वह उतना ही अधिक चतुर होता है। इसी प्रकार जितनी अधिक समय वह हानिकारक पर्यावरण में रहता है तो बच्चा हानिकारक होता है।

वंशानुक्रम व वातावरण का आपेक्षिक महत्व

बालक की शिक्षा और विकास में वंशानुक्रम और वातावरण के आपेक्षिक महत्व को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

(1) वंशानुक्रम और वातावरण की अपृथकता।

शिक्षा की किसी भी योजना में वंशानुक्रम और वातावरण को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार आत्मा और शरीर का संबन्ध है, उसी प्रकार वंशानुक्रम और वातावरण का भी संबन्ध है।

(2) वंशानुक्रम व वातावरण का समान महत्व

हमें साधारणतया यह प्रश्न सुनने को मिलता है बालक की शिक्षा और विकास में वंशानुक्रम अधिक महत्वपूर्ण है या वातावरण। यह प्रश्न पूछना, यह पूछने के समान है कि मोटर कार के लिए इंजिन अधिक महत्व

78

जूण है या पेट्रोल। जिस प्रकार मोटर कार के लिए इंजिन और पेट्रोल का समान महत्व है उसी प्रकार बालक के विकास में वंशानुक्रम और वातावरण का समान महत्व है।

(ड) वंशानुक्रम व वातावरण की पारस्परिक निर्भरता

वंशानुक्रम और वातावरण में पारस्परिक निर्भरता है। ये एक दूसरे के पूरक सहायक और सहयोगी है। बालक को जो मूलप्रवृत्तियाँ वंशानुक्रम से प्राप्त होती है, उनका विकास वातावरण में होता है। 'Morse' का मत है " मानव व्यवहार की प्रत्येक विशेषता वंशानुक्रम और वातावरण की अंतःक्रिया का फल है।

(च) वंशानुक्रम व वातावरण के प्रभावों में अंतर करना असंभव

यह बताना असंभव है कि बालक की शिक्षा विकास में वंशानुक्रम और वातावरण का कितना प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रम में सभी बातें आ जाती है जो व्यक्ति के जन्म के समय नहीं वरन गर्भदान के समय उपस्थित थी। इसी प्रकार वातावरण में वे सब बाह्यतत्व आ जाते है, जो व्यक्ती को जन्म के समय से प्रभाव करते।

९१

(६) बालक वंशानुक्रम व वातावरण की उपज

बालक का विकास इसलिए नहीं होता है कि उसे कुछ बातें वंशानुक्रम से और कुछ वातावरण से प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता है कि वह अपने वंशानुक्रम और वातावरण में से किसकी अधिक उपज है। सत्य यह है कि वंशानुक्रम और वातावरण का योगफल न होकर गुणनफल है।

शिक्षक के लिए वंशानुक्रम व वातावरण का महत्व

(1) वंशानुक्रम का महत्व

(1) वंशानुक्रम के कारण बालकों में शारीरिक विभिन्नता होती है। शिक्षक इस ध्यान से संबद्ध होकर उनके शारीरिक विकास में योग दे सकता है।

(2) वंशानुक्रम के कारण बालकों की जन्मजात क्षमताओं में अंतर होता है। शिक्षक इस बात को ध्यान में रखकर कम प्रगति करने वाले बालकों को अधिक प्रगति करने में योग दे सकता है।

(3) बालकों और बालिकाओं में लिंगीय भेद वंशानुक्रम के कारण होते हैं। जिससे विभिन्न विषयों में उनकी योग्यता कम या अधिक होती है। शिक्षक इस ज्ञान से उनके लिए उपयुक्त विषयों के अध्ययन की व्यवस्था कर सकता है।

(4) वंशानुक्रम के कारण बालकों में अनेक प्रकार की विभिन्नतायें होती हैं। शिक्षक बालकों की इन विभिन्नताओं का अध्ययन करके इनके अनुरूप शिक्षा का आयोजन कर सकता है।
(5) वंशानुक्रम के कारण बालकों की सीखने की योग्यता में अंतर होता है। शिक्षक इस ज्ञान से अवगत होकर देर से सीखने वाले बालकों के प्रति सहनशील और जल्दी सीखनेवाले बालकों को अधिक कार्य दे सकता है।

वातावरण का महत्व

(1) बालक अपने परिवार पड़ोस और खेल के मैदान में अपना पर्याप्त समय व्यतीत करता है और इससे प्रभावित होता है। शिक्षक इन स्थानों के वातावरण को ध्यान में रखकर ही बालक का उचित पथप्रदर्शन करता है।

(2) व्यक्ति जन्म से ही एक निश्चित सांस्कृतिक वातावरण में रहता है और उसके आदर्शों के अनुरूप ही आचरण करता है। इस तत्व को जाननेवाला शिक्षक बालक को अपनी सांस्कृतिक विकास करने में योग दे सकता है।

(3) अनुकूल वातावरण में जीवन का विकास होता है। और व्यक्ति उत्कर्ष की ओर बढ़ता है। इस बात को समझनेवाला शिक्षक अपने छात्रों की रुचियों, प्रवृत्ति और क्षमताओं के अनुकूल वातावरण प्रदान करके उन्हें उत्कर्ष की ओर बढ़ने में सहायता दे सकता है।

है। (घ) वातावरण बालक के विकास की दिशा निश्चित करता है। वातावरण ही निश्चित करता है कि बालक बड़ा होकर अच्छा या बुरा, चरित्रवान और चरित्रहीन, संयमी या व्यभिचारी, व्यापारी या साहित्यकार, देशप्रेमी या देशद्रोही बनेगा। इस तथ्य पर मनन करनेवाला शिक्षक अपने छात्रों के लिए ऐसे वातावरण का सृजन कर सकता है जिससे उनका विकास उचित दिशा में हो।

(ङ) वातावरण के महत्व को समझनेवाला शिक्षक विद्यालय में बालकों के लिए ऐसा वातावरण उपस्थित कर सकता है, जिससे उनमें विचारों की उचित अभिव्यक्ति, शिष्ट सामाजिक व्यवहार, कर्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान, स्वाभाविक प्रवृत्तियों का नियंत्रण आदि गुणों का अधिकतम विकास हो।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक के लिए वंशानुक्रम और वातावरण दोनों का ज्ञान अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

वंशानुक्रम तथा वातावरण एक सिक्के के दो पक्ष हैं। एक दूसरे के लिए अनिवार्य हैं। मानव विकास के लिए इसको पृथक नहीं किया जा सकता।

अधिगम
Chapter.

अधिगम या सीखना

सीखने के प्रक्रिया

प्रत्येक व्यक्ति नित्यप्रति अपने जीवन में नए-नए अनुभव एकत्र करता रहता है। ये नवीन अनुभव व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिए यह अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने सीखने को मानसिक प्रक्रिया माना है। यह क्रिया जीवन भर निरंतर चलती रहती है।

सीखने की प्रक्रिया की दो मुख्य विशेषताएँ हैं:- (1) निरंतरता और सार्वभौमिकता.

यह प्रक्रिया सदैव और सर्वत्र चलती रहती है। इसलिए मानव अपने जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है। इसकी सीखने की प्रक्रिया में विराम और अंतरता की अवस्था कभी भी नहीं आती है। मानव के सीखने का कोई निश्चित स्थान और समय, नहीं होता। वह हर घड़ी और हर जगह कुछ न कुछ सीख सकता है। ~~परिवार, समाज, सिनेमा~~ परिवार, समाज, सिनेमा

Q3 लड़का, पड़ोसियों, साथियों, अपरिचित व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थानों आदि से थोड़ा या अधिक शिक्षा ग्रहण करता है। इस प्रकार वह आजीवन सीखता हुआ और इसके फल-स्वरूप अपने व्यवहार में परिवर्तन करता हुआ जीवन में आगे बढ़ता चला जाता है। इसलिए वुडवर्थ ने कहा है, "सीखना विकास की प्रक्रिया है" है ("Learning is a process of developement).

सीखने की प्रक्रिया व परिभाषा

सीखना किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है। उदा: हम अपने हाथ में आम लिए चले जा रहे हैं। कहीं से एक भूखे बन्दर की उसपर नजर पड़ती है। वह आम को हमारे हाथ से छीनकर ले जाता है। यह भूखे होने की स्थिति में आम के प्रति बँदर की प्रतिक्रिया है। पर यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक है सीखी हुई नहीं है। इसके विपरीत बालक हमारे हाथ में आम देखता है। वह उसे छीनता नहीं है वरन हाथ फैलाकर माँगता है। आम के प्रति बालक की यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक नहीं, सीखी हुई है। जन्म के कुछ समय बाद से ही उसे अपने वातावरण में कुछ न कुछ सीखने को मिल जाता है। पहली बार आग को देखकर बच्चा उसे छू लेता है और जल जाता

84 है। फलस्वरूप उसे नया अनुभव होता है। अतः जब वह आग को फिर देखता है तब उसके प्रति उसकी प्रतिक्रिया भिन्न होती है। अनुभव ने उसे आग को छूना सिखा दिया है। अतः वह आग से दूर रहता है। इस प्रकार- प्रकार 'सीखना अनुभव द्वारा व्यवहार में परिवर्तन करना है'।

हम सीखने के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ दे रहे हैं -

स्किनर :- "सीखना व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है।"

क्रो व क्रो :- "सीखना आदत को, ज्ञान और अभिवृद्धि का अर्जन है।"

Grabes :- "सीखना अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है।"

सीखने की विशेषताएँ

(1) सीखना परिवर्तन है

व्यक्ति अपने और दूसरों के अनुभवों से सीखकर अपने व्यवहार, विचारों, इच्छाओं, भावनाओं, आदि में परिवर्तन करता है।

85

(२) सीखना सार्वभौमिक है
(३) सीखना विकास है
(४) सीखना अनुकूलन है।
(५) सीखना नया कार्य करना है।
(६) सीखना अनुभवों का संगठन है।
(७) सीखना विवेकपूर्ण है।
(८) सीखना उद्देश्यपूर्ण है।
(९) सीखना सक्रिय है।
(१०) सीखना व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों है।
(११) सीखना वातावरण की उपज है।
(१२) सीखना खोज करना है।

Question

सीखने के नियम

सीखने के विभिन्न नियमों का परिचय दीजिए, तथा इनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए :-

शिक्षा मनोविज्ञान में अधिगम क्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। अधिगम अव्यवस्थित रूप में नहीं चलती है। अपितु अधिगम कुछ नियमों के अनुसार चलती है। जब भी हम कुछ सीखते है तो निश्चित रूप से कुछ नियमों का अनुसरण करते है।

सीखने के नियमों के निर्धारण के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग एवं परीक्षण किए हैं। आजकल थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित अधिगम के नियमों को सार्वभौमिक मान्यता प्रदान की जाती है। थार्नडाइक ने

26 अधिगम को मुख्य एवं गौण दो भागों में बाँटा है।

थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित अधिगम नियम

(I) मुख्य नियम

(i) तत्परता का नियम

इन नियमों का अभिप्राय यह है कि यदि हम किसी कार्य को सीखने के लिए तैयार या तत्पर होते हैं तो हम उसे शीघ्र ही सीख लेते हैं। तत्परता में कार्य करने की इच्छा निहित रहती है। इस नियम का अध्यापन में अधिक महत्व है। अध्यापक को कोई विषय पढ़ाते समय बालक तत्परता का लाभ उठाना चाहिए। इसके साथ ही अध्यापक को शिक्षण के प्रारंभ में बालकों में तत्परता का विकास करना चाहिए। उनको चाहिए कि नवीन ज्ञान ~~सीखने के~~ सिखाने के लिए बालकों को मानसिक रूप से तैयार करें। प्रश्नों की सहायता से, अथवा दृश्य श्रव्य सामग्रियों द्वारा अध्यापकों को पाठ के प्रारंभ में बालकों में जिज्ञासा पैदा करके उनको नवीन पाठ पढ़ने के लिए तत्पर बनाया जा सकता है।

(2) अभ्यास का नियम

इस नियम का तात्पर्य है - अभ्यास कुशल बनाता है। यदि हम किसी कार्य का अभ्यास करते

88 रहते है तो हम उसे सरलता पूर्वक करना सीख जाते। यदि किसी कार्य को बारबार किया जाते है तो वह कार्य जल्दी सीख सकते है। इसे थार्नडाइक ने उपयोग का नियम ही कहता है। इसके विपरीत यदि किसी कार्य को बहुत समय तक नहीं किया जाते है तो वह कार्य भूलने लगता है। इसे थार्नडाइक ने अनुपयोग का नियम कहा है।

जैसे मुद्रलेखन, साइकल चलाना, टेनिस, आदि खेल इन सब में जितना अधिक हमारा अभ्यास होगा उतना ही हम निपुण होगा।

शैक्षिक महत्व

इस नियम के आधार पर कहा जा सकता है कि जो विद्यार्थी अपने विषय का नित्यप्रति अध्ययन नहीं करता तो वह उसमें कभी पारंगत नहीं हो सकता। यदि हम बालक बालिकाओं में आदतों का विकास करना चाहते है तो इस नियम का सहारा लेना होगा।

(3) परिणाम या प्रभाव का नियम

इसे संतोष और असंतोष का नियम भी कहते है। यदि किसी काम को करने में हमें सुख या संतोष की प्राप्ति मिलती है तो हम उस काम को बार बार करना चाहेंगे। इसके विपरीत यदि किसी कार्य को करने में दुःख तथा असंतोष होता है तो उस

कार्य को करना हम कभी भी पसंद न करेंगे।

82 .

शैक्षिक महत्व

थार्नडाइक का कथन है कि परिणाम या प्रभाव का नियम सीखने का मूलाधार है। इसी नियम का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में बड़े व्यापक रूप से किया जा सकता है। यदि किसी काम को करने से बालक बालिकाओं को अध्यापकों अथवा अभिभावकों की प्रशंसा या शाबाश ही मिलती है तो वे उसे जल्दी करना सीख जाते हैं। इसके ~~प्रकार~~ विपरीत जिस कार्य को करने में बालकों की निन्दा की जाय तो उसे वे कभी नहीं करना चाहेंगे।

(ब) अन्य नियम

(1) नवीनता का नियम

इस नियम के अनुसार जिस क्रिया का अभ्यास जितना नवीन होगा मनुष्य उतना ही अधिक सीखेगा।

(2) प्राथमिकता का नियम

इस नियम के अनुसार व्यक्ति जिन क्रियाओं को सबसे पहले करता है उनका प्रभाव गहरा पड़ता है।

~~गौण नियम~~

गौण नियम

(1) बहु प्रतिक्रिया का नियम
(2) ~~अभिवृद्धयाँ या मनोवृद्धयाँ~~ का नियम
(2) अभिवृत्ती या मनोवृत्ती का नियम
(3) आंशिक क्रिया का नियम
(4) ~~समम~~ आत्मीकरण का नियम
(5) संबन्धित परिवर्तन का नियम

(1) बहु प्रतिक्रिया का नियम

इस नियम का अभिप्राय यह है कि जब हम कोई नया कार्य करना सीखते हैं, तब हम उनके प्रति अनेक और विभिन्न ~~प्रतिक्रिया~~ प्रकार की प्रति क्रियाएँ करते हैं। दूसरे शब्दों में हम विविध प्रकार के प्रयोग और विधियों का प्रयोग करके उस कार्य में सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। कुछ समय तक प्रयत्न करने के बाद हमें उस कार्य को करने की ठीक विधि या ढंग मालूम हो जाता है। प्रयत्न और भूल द्वारा सीखने का सिद्धांत इस नियम पर आधारित है।

(2) मनोवृत्ती का नियम

इस नियम ~~का~~ तात्पर्य यह है कि जिस कार्य के प्रति हमारी जैसी ~~का~~ मनोवृत्ती ~~के~~ होती है उसी अनुपात में हम उसको सीखते हैं। यदि हम मानसिक

समझने को करना तथा कार्य भी आसानी से नहीं करेंगे)

रूप से किसी कार्य को करने के लिए तैयार नहीं हैं तो हम उसे करने में असफल होते हैं या अनेक त्रुटियाँ करते हैं या बहुत विलंब से करते हैं। यही कारण है कि शिक्षक प्रेरणा देकर बालकों को नवीन ज्ञान को ग्रहण करने के लिए मानसिक रूप से तैयार करते हैं।

(इ) आंशिक क्रिया का नियम

इस नियम का अनुसरण करके हम जिस कार्य को करना चाहते हैं उसे छोटे छोटे अंकों या भागों में विभाजित कर लेते हैं। इस प्रकार का विभाजन कार्य को सरल और सुविधाजनक बना देता है। हम उन छोटे-छोटे अंकों को शीघ्रता और सुगमता से करके संपूर्ण कार्य को पूरा करते हैं। इस नियम पर अंश को पूर्ण की ओर का शिक्षण का सिद्धांत आधारित किया जाता है। शिक्षक अपनी संपूर्ण विषय सामग्री को छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित करके छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

(ई) आत्मीकरण का नियम

इस नियम का अभिप्राय यह है कि हम जो भी नया ज्ञान प्राप्त करते हैं उसका आत्मीकरण कर लेते हैं या उसे आत्मसात कर लेते हैं। दूसरे शब्दों

91 में हम नवीन ज्ञान को अपने पूर्व ज्ञान का स्थाई अंक बना लेते हैं। यही कारण है कि जब शिक्षक बालक को कोई नई ~~पाठ~~ बात सिखाता है, तब उसका पहले सीखी हुई बात से संबन्ध स्थापित कर देता है।

(३) सम्बन्धित परिवर्तन का नियम

इस नियम का अभिप्राय है पहले कभी की गई क्रिया को उसी के समान दूसरी ~~परिस्थिति~~ परिस्थिति में उसी प्रकार करना। इसमें क्रिया का स्वरूप तो वही रहता है, पर परिस्थिति में परिवर्तन हो जाता है। यदि माँ का बच्चा मर जाता है तो वह उसकी वस्तुओं को उसी प्रकार सीने से लगाती है जिस प्रकार वह बच्चे को लगाती थी। प्रेमिका की अनुपस्थिति में प्रेमी उसके चित्र से उसी प्रकार बातें करता है, जिस प्रकार वह उससे करता था।

सीखने के सिद्धांत — Rough

(1) थार्नडाइक का सीखने का सिद्धांत या उद्दीपक प्रतिक्रिया सिद्धांत
(2) पावलाव का संबन्ध प्रतिक्रिया सिद्धांत, अनुकूलित अनुकूलन वाद सिद्धांत
(3) हल का पुनर्बलन सिद्धांत या प्रबलन सिद्धांत
(4) स्किनर अधिगम सिद्धांत या सीखने का सिद्धांत या क्रिया प्रसूत अधिगम सिद्धांत
(5) कोहलर का सूझ का सिद्धांत या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत

सीखने के सिद्धांत

(1) थार्नडाइक का संबन्धवाद या प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम या उद्दीपक प्रतिक्रिया सिद्धांत
(2) पावलाव का संबन्ध प्रतिक्रिया अधिगम सिद्धांत
(3) हल का पुनर्बलन सिद्धांत या प्रबलन सिद्धांत
(4) स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन सिद्धांत
(5) गेस्टाल्ट वादी का अन्तर्दृष्टि ~~अधिगम~~ अधिगम सिद्धांत।

(1) थार्नडाइक का सिद्धांत

थार्नडाइक ने इस सिद्धांत को उद्दीपक प्रतिक्रिया सिद्धांत (S. R. Theory) भी कहते हैं। ~~अत~~ थार्नडाइक का कथन है कि व्यक्ति जब कोई कार्य सीखता है तो ..

(1) उसके सामने विशेष परिस्थिति या उद्दीपक होता है।

(2) यह उद्दीपक व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया करने के लिए प्रेरित करता है।

(3) यह प्रतिक्रिया उपयुक्त होती है तो व्यक्ति उसे बार-बार करता है। क्योंकि उसे संतोष मिलता है। इस प्रकार वह प्रतिक्रिया बार-बार करने से वह उस

93 प्रतिक्रिया या व्यवहार को सीख लेता है। इस प्रकार अधिगम या सीखने के प्रयास में उद्दीपन (S) से प्रतिक्रिया संबंध स्थापित हो जाता है।

थार्नडाइक ने एक स्थान पर कहा है " अधिगम या सीखना संबंध स्थापित करना है। संबंध स्थापित करने का काम मनुष्य का मस्तिष्क करता है।"

थार्नडाइक का प्रयोग

थार्नडाइक ने अपने सिद्धांत परखने के लिए जानवरों और बिल्लियों पर कई प्रयोग किये। एक प्रयोग इस प्रकार था। पिंजरे में बिल्ली को बंद कर दिया गया। पिंजरे के द्वार सिटकनी के दबने से खुलता था। पिंजरे के बाहर दूध रख दिया। बिल्ली के लिए दूध ही उद्दीपन था। उद्दीपन के कारण बिल्ली में प्रतिक्रिया प्रारंभ हुई। उसने बाहर निकलने के कई विफल प्रयास किये। अचानक उसका पंजा सिटकनी पर पड़ गया। सिटकनी दबने से द्वार खुल गया। बिल्ली बाहर आई और दूध पी गई।

थार्नडाइक ने इस प्रयोग कई बार दुहराया। धीरे-धीरे निरर्थक प्रयास कम होते गये और फिर ऐसा समय जब आया बिल्ली बिना भूल किये सिटकनी दबाकर द्वार खोलती थी। इस प्रकार प्रयास और त्रुटि द्वारा बिल्ली ने द्वार खोलना सीखा। जब उद्दीपन और प्रतिक्रिया में संबंध

95

स्थापित हो जाएगा तो अधिगम या सीखने की प्रक्रिया पूरी हो गई।

उद्दीपक प्रतिक्रिया सिद्धांत की विशेषताएँ

(1) इस सिद्धांत का मूलाधार है उद्दीपक और प्रतिक्रिया में संबन्ध स्थापित होना

(2) सिद्धांत शिक्षा में प्रेरणा को महत्व देता है।

(3) यह सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि अधिगम या सीखने की क्रिया असमान प्रक्रिया नहीं है, वरन ज्ञानात्मक, क्रियात्मक और भावात्मक अंगों का एकीकरण है।

(4) सिद्धांत के अंतर्गत जो व्यक्ति उद्दीपकों और प्रतिक्रियाओं में जितना घनिष्ट संबन्ध स्थापित कर लेता है वह उतना ही अधिक योग्यता प्राप्त कर लेता है।

(5) इस सिद्धांत के आधार पर थार्नडाइक ने सीखने के तीन प्रमुख नियम प्रतिपादित किए हैं। (1) तत्परता का नियम (2) अभ्यास का नियम और (3) परिणाम या प्रभाव का नियम।

उद्दीपक प्रतिक्रिया सिद्धांत और शिक्षा

95

(1) इस सिद्धांत बालकों में धैर्य तथा परिश्रम के गुण विकसित करता है।

(2) इस सिद्धांत से बालकों में श्रम के प्रति आस्था का भाव जाग रह होता है।

(3) मंद बुद्धि और बड़े बालकों के लिए यह सिद्धांत उपयोगी है।

(4) 'कालसनिक' का कथन है लिखना, पढ़ना, गणित सिखाने में यह सिद्धांत उपयोगी है।

(5) ~~व~~.गथिसन के अनुसार यह सिद्धांत समस्या समाधान पर बल देता है। इसलिए सीखने की प्रक्रिया में इसका कम महत्व है।

(6) इस सिद्धांत के अनुसार बालकों के अधिगम को सरस, सरल और उपयोगी बनाने के लिए सहानुभूति पूर्ण व्यवहार, प्रेम, पुरस्कार प्रशंसा, पुनरावृत्ति, और अभ्यास को अधिक से अधिक काम के तत्परता लाना चाहिए।

पावलाव का संबद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धांत

संबद्ध प्रतिक्रिया सिद्धांत का प्रतिपादन :-

→ प्रो. पी. पावलाव ने किया। इसके अनुसार सीखना एक अनुकूलित अनुक्रिया है। 'बर्नार्ड' के शब्दों में

"अनुकूलित अनुक्रिया = उत्तेजना की पुनरावृत्ति द्वारा व्यवहार का स्वचालन है। इसमें उत्तेजना पहले किसी विशेष अनुक्रिया के साथ जुड़ी रहती है और अंत में किसी व्यवहार का कारण बन जाती है जो पहले मात्र क्रम से साथ जुड़ी हुई थी।"

पावलाव का प्रयोग

पावलाव ने कुत्ते पर प्रयोग किया। उसने कुत्ते को भोजन देने से पहले कुछ दिनों तक घंटी बजायी। उसके बाद उसने भोजन न देकर केवल घंटी बजायी तब भी कुत्ते के मुँह से लार ~~टपक~~ टपकने लगी। इसका कारण यह था कि कुत्ते ने घंटी बजने से यह सीख लिया था कि उसे भोजन मिलेगा। घंटी के प्रति कुत्ते की इस प्रतिक्रिया को पावलाव ने सम्बद्ध सहज क्रिया की संज्ञा दी।

यहाँ पर - ~~घंटी के प्रति~~

(1) भोजन - सहज या प्राकृतिक उद्दीपक

(2) लार टपकना - कुत्ते की प्रतिक्रिया

(3) घंटी की आवाज :- प्रभाव रहित उद्दीपक जो भोजन का स्मरण करा देती थी। इसलिए वे सम्बद्ध उद्दीपक हैं।

(4) घंटी सुनकर लार टपकना :- सम्बद्ध प्रतिक्रिया।

इस उदाहरण में भोजन देखकर कुत्ते के मुँह से लार टपकते हैं। यहाँ भोजन उद्दीपक है।

और कुत्ते के मुँह से लार टपकना एक स्वाभाविक क्रिया या सहज क्रिया है। यदि किसी अस्वाभाविक उद्दीपक के कारण कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगे तो इसे संबन्ध सहज क्रिया या संबन्ध प्रतिक्रिया कहते हैं।

इस प्रकार जो सीखा जाता है, उसे संबन्ध अधिगम अथवा साहचर्यात्मक अधिगम कहा जाता है। पावलाव ने इसे इन शब्दों में व्यक्त किया है " उद्दीपक के प्रति होने वाली प्रतिक्रिया की पुनरस्मृति में लाकर अधिगम करना संबन्ध या साहचर्य अधिगम है।

विशेषताएँ

समाज मनोवैज्ञानिक इसकी सहायता से सामूहिक व्यवहार, भय आदि की विवेचना करने में सफल हुए हैं। संबन्ध प्रतिक्रिया सिद्धांत का सबसे अधिक प्रयोग मनोचिकित्सा के क्षेत्र में हुआ है। इस सिद्धांत द्वारा मनोचिकित्सा के ... पशुओं और मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों की निर्मल योग्यता जानी जा सकती है।

संबन्ध प्रतिक्रिया और शिक्षा

क्रो एवं क्रो का कथन है कि " इस सिद्धांत की सहायता से बालकों में अच्छे व्यवहार और उत्तम अनुशासन की भावना विकसित की जा सकती है। "
इस सिद्धांत से बालकों के समाजीकरण में सहायता मिलती है ... वातावरण ... की सबसे अच्छी प्रकार से समायोजन

98 कर सकते हैं। यदि कोई बालक या प्रौढ़ व्यक्ति किसी स्थान, किसी विषय, किसी वस्तु से अकारण ही भयभीत है तो इसका भय स्थान, विषय अथवा वस्तु के पास इसे ले जाकर काम किया जा सकता है। क्रो व क्रो ने एक स्थान पर कहा है " यह सिद्धान्त उन क्रियाओं के लिए बहुत उपयोगी है जिनमें चिंतन की आवश्यकता नहीं पड़ती। उदाहरण :- सुलेख और वर्तनी में किया जा सकता है।"

③ गेस्टाल्टवादी का अन्तर्दृष्टि अधिगम सिद्धान्त (सूझ कोहलर)

इस सिद्धांत का प्रतिपादन गेस्टाल्टवादियों ने किया था। इसलिए इसे गेस्टाल्ट सिद्धांत भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सीखनेवाला परिस्थिति को भली भाँति समझकर अपनी उच्चतर मानसिक शक्ति का प्रदर्शन करके सीखता है तो हम उसे अन्तर्दृष्टि या सूझ द्वारा सीखना कहते हैं। शिक्षा का 'शब्दकोश' नामक पुस्तक में अन्तर्दृष्टि की परिभाषा इन शब्दों में दी है " वास्तविक संबंध का आकस्मिक निश्चित और तात्कालिक ज्ञान ही अन्तर्दृष्टि है।

सीखनेवाला परिस्थिति के विभिन्न अंकों को समझकर उनमें संबन्ध स्थापित कर लेता है तब उनमें एक अन्तर्दृष्टि या सूझ पैदा हो जाती है। यह अन्तर्दृष्टि या सूझ सीखने में सहायक होती है। अन्तर्दृष्टि प्राप्त व्यक्ति निर्दिष्ट स्थान कि ओर निश्चित और क्रमिक गति से अग्रसर होकर सीखने

जाता है।

99 कोहलर का प्रयोग

अर्न्तदृष्टि या सूझ द्वारा सीखना प्रत्यक्षीकरण पर आधारित होता है। और इससे कठिनतम परिस्थितियों का समाधान हो सकता है। इसके बारे में कोहलर ने 'सुलतान' नामक वनमानुष पर कई प्रयोग किये। एक प्रयोग में सुलतान को एक पिंजरे में बन्द कर दिया। पिंजरे में दो बाँस के टुकड़े इस प्रकार रखे हुए थे कि उन्हें एक दूसरे में फंसाकर लंबा किया जा सकता था। पिंजरे के बाहर कई केले रख दिये गये हैं। एक बाँस के टुकड़े से केलों तक नहीं पहुँचा जा सकता था। परन्तु दोनों टुकड़ों को जोड़कर केले सरलता से प्राप्त किये जा सकते थे। पहले तो सुलतान ने बाँस के एक टुकड़े से केला पाना चाहा पर उसे सफलता न मिली। सुलतान दोनों बाँस के टुकड़ों से खेलने लगा। खेलते खेलते अचानक एक टुकड़ा दूसरे में फस गया। अब बाँस लम्बा हो गया। सुलतान ~~वि~~ केले को अपने ओर खींचा और केले खा लिया।

इस प्रयोग में सुलतान ने परिस्थिति को समझने का प्रयास किया। इसने परिस्थिति के विभिन्न अंगों पर ध्यान दिया। फिर बाँस के टुकड़ों और

केलों के दूरी का संबन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। और सूझ या अन्तर्दृष्टि से केला प्राप्त कर लिया।

शिक्षा

1. इस सिद्धांत द्वारा बालकों के कल्पना और तर्कशक्ति का विकास होता है।
2. सूझ का सिद्धांत बालकों को स्वयं खोज करके ज्ञान अर्जन करने के लिए प्रेरित करता है।
3. अन्तर्दृष्टि या सूझ का सिद्धांत रचनात्मक कार्यों के लिए उपयोगी हो।
4. विभिन्न अध्ययन बताते है कि यह सिद्धांत गणित जैसे कठिन विषयों के शिक्षण के लिए बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है।
5. क्रो व क्रो का कहना है यह सिद्धांत कला संगीत और साहित्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।
6. अन्तर्दृष्टि सिद्धांत अनुभव की संपूर्णता पर अधिक बल देता है।

(4) हल का पुनर्बलन सिद्धान्त

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हल ने 1915 ईस्वी में "व्यवहार के सिद्धांत" नामक एक पुस्तक लिखी। इसमें पुनर्बलन सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। पुनर्बलन सिद्धांत थार्नडाइक और पावलव के सिद्धांत पर आधारित

101 पुनर्बलन सिद्धांत का अर्थ और स्वरूप

स्टीफन ने अपनी पुस्तक शिक्षा मनोविज्ञान की भूमिका में हल के पुनर्बलन सिद्धांत को इस प्रकार स्पष्ट किया है, अधिगम या सीखने का मूलाधार है आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया।

स्टीफन ने एक उदाहरण द्वारा इस सिद्धांत को समझाया है। एक पिंजरे में भूखा पशु बन्द है। पिंजरे के बाहर भोजन पड़ा हुआ है। पिंजरा सिटकनी को दबाने से खुलता है। ~~अपनी~~ अपनी भूख को संतुष्ट करने के लिए पशु कई प्रकार की क्रियाएं करता है। भोजन उसकी क्रियाओं को बल प्रदान करता है अर्थात पुनर्बलन करता है। इसलिए वह पिंजरे से बाहर आने के लिए सभी प्रकार की चेष्टाएं करता है। अपनी चेष्टाओं के परिणामस्वरूप वह सिटकनी को दबाकर बाहर आना सीख लेता है। इस प्रकार भोजन की आवश्यकता को संतुष्ट करने की प्रक्रिया द्वारा वह पिंजरा खोलना सीख जाता है। सीखने का आधार यही है। "हल ने कहा है "सीखना आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया द्वारा होता है।"

पुनर्बलन सिद्धांत की विशेषताएं

(1) हिलगार्ड का कथन है अब तक सीखने के जितने भी सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं, उनमें यह सर्वोत्तम है। इसकी उत्तमता का कारण वैज्ञानिकता है।

(2) इसकी दूसरी विशेषता यह है कि अधिगम या सीखने का हल का यह सिद्धांत चालक न्यूनता सिद्धांत है।

'02 उदाहरण स्वरूप भोजन की जरूरत पूरी न होने पर भोजन का चालक प्राणी को भोजन प्राप्त करने के लिए क्रियाशील बना देता है। कुछ समय बाद जब उसकी भोजन की आवश्यकता पूरी हो जाती है तो भूख के चालक की शक्ति में न्यूनता आ जाती है।

(3) प्राणी पुनर्बलन के आधार पर सीखता है। क्योंकि उसकी प्रतिक्रियाओं और उद्दीपक में घनिष्ट संबन्ध स्थापित हो जाता है।

पुनर्बलन सिद्धान्त की शिक्षा

(1) इस सिद्धान्त बालक के शिक्षण में प्रेरणा पर बहुत अधिक बल देता है। क्योंकि बालकों को प्रेरित करके ही उनकी शिक्षा और ज्ञान की आवश्यकता पूरी की जा सकती है।

(2) दूसरी बड़ी विशेषता है कि पुनर्बलन का सिद्धान्त बालकों की क्रियाओं और आवश्यकताओं से संबन्ध स्थापित करने पर बल देता है। इसका सीधा साधा अभिप्राय है कि बालक बालिकाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम की रचना करनी चाहिए।

(3) स्किनर ने एक स्थान पर कहा है कि "हल का कारण है कि सीखने का कारण ही किसी आवश्यकता का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पूर्ण होना होता है।

103 (स्किनर का क्रिया प्रसूत ~~अधिगम~~ अनुबन्धन सिद्धांत

जिन मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम या सीखने से सम्बन्धित सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है उनमें स्किनर का विशेष योगदान है। स्किनर के अनुसार क्रियाएँ दो प्रकार की होती है।

(1) ~~अ~~ उद्दीपक अनुबन्धन वाली
(2) क्रिया प्रसूत अनुबन्धन

स्किनर का प्रयोग

स्किनर ने अधिगम या सीखने के क्षेत्र मे कई प्रयोग किये है वह इस परिणाम पर पहुँचा है कि अभिप्रेरणा पर आधारित क्रिया शीलता ही सीखने के लिए जिम्मेदार है।

उसने कबूतरों और चूहा आदि पर कई प्रयोग किए और इस परिणाम पर पहुँचा कि जीवधारियों के दो प्रकार के व्यवहार पाये जाते है। (1) प्रतिक्रियात्मक (2) क्रिया प्रसूत।

स्किनर ने चूहे पर प्रयोग किया। उसने एक संदूक बनवाया जिसमे खटका था। खटके पर चूहे का पैर पड़ते ही "खट" की ध्वनी होती है। इस आवाज को सुनकर चूहा आगे बढ़ता है, उसे भोजन की प्राप्ति होती है। यह भोजन चूहे के लिए पुनर्बलन का काम करता है। चूहा भूखा होने के कारण खटके को दबाता है।

104

यदि किसी क्रिया के उपरांत कोई बल प्रदान करने वाला उद्दीपक मिलता है तो उस क्रिया की शक्ती बढ़ जाती है।

शिक्षा

(1) स्किनर के इस सिद्धांत के प्रयोग से बालकों और बालिकाओं के शब्द भण्डार को बढ़ाया जा सकता है।
(2) अध्यापक उद्दीपक का नियंत्रण करके बालक-बालिकाओं के वांछित व्यवहार का निर्माण करता है।
(3) स्किनर का कहना है कि इस विधि में जब काम में सफलता प्राप्त होती है तो काम करने वाले को संतोष की प्राप्ती होती है और इस संतोष द्वारा क्रिया को बल मिलता है।
(4) इस विधि द्वारा व्यक्ति को परिणाम की जानकारी प्राप्त होती है। इससे उसके जीवन की भावी व्यवहार पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।
(5) क्रिया प्रसूत अनुबन्धन सिद्धांत में पुनर्बलन का बहुत अधिक महत्व है। बालक जितना अधिक अभ्यास करता है क्रिया को इतना अधिक बल मिलता है।

Chapter :-

105 व्यक्तिगत विभिन्नता का अर्थ व स्वरूप

(समान) कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते। यहाँ तक की जुड़वाँ बच्चों में भी असमानता पायी जाती है। इस दृष्टि से वैयक्तिक विभिन्नता प्रकृति द्वारा प्रदत्त स्वाभाविक गुण है।

सभी प्रकार की शिक्षा संस्थायें अति प्राचीन काल से मानसिक योग्यताओं के आधार पर छात्रों में अंतर करती चली आ रही है। यद्यपि उन्होंने अपनी इस प्राचीन परंपरा का अभी तक परित्याग नहीं किया है, पर वे इस धारणा का निर्माण कर चुकी हैं कि छात्रों में अन्य योग्यतायें और कुशलतायें भी होती हैं जिसके फलस्वरूप उनमें कम या अधिक विभिन्नता होती है। स्किनर ने लिखा है "व्यक्तिगत विभिन्नता में संपूर्ण व्यक्तित्व का कोई भी ऐसा पहलू सम्मिलित हो सकता है जिसका माप किया जा सकता है।

व्यक्तिगत विभिन्नता के प्रकार

(1) शारीरिक विभिन्नता

शारीरिक दृष्टि से व्यक्तियों में अनेक प्रकार की विभिन्नता का अवलोकन होता है जैसे रंग, रूप, भार, बनावट, शारीरिक परिपक्वता आदि।

(2) मानसिक विभिन्नता

मानसिक दृष्टि से व्यक्तियों में विभिन्नता के दर्शन होते हैं। कोई व्यक्ति प्रतिभाशाली कोई अत्यधिक

 बुद्धिमान, कोई कम बुद्धिमान और मूर्ख होता है। इतना ही नहीं एक ही व्यक्ति में शैशवावस्था, किशोरावस्था और अन्य अवस्था में विभिन्न मानसिक योग्यता पायी जाती है।

(3) संवेगात्मक विभिन्नता

संवेगात्मक दृष्टि से व्यक्तियों की विभिन्नता को सहज ही जाना जा सकता है। इन विभिन्नता के कारण ही कुछ व्यक्ति उदार हृदय, कुछ कठोर हृदय कुछ प्रायः चिन्त होते है। उनकी संवेगात्मक विभिन्न विभिन्नताओं का मापन करने केलिए संवेगात्मक परीक्षाणों का निर्माण किया गया।

(4) रुचियों में विभिन्नता

रुचियों की दृष्टि से व्यक्तियों में कभी कभी आश्चर्यजनक विभिन्नताएँ देखने को मिलती है। अश्चर्यजनक ~~विभिन्नताएँ~~ किसी को संगीत में किसी को चित्रकला में; किसी को खेल में, किसी को वार्तालाप में रुचि होती है। प्रत्येक व्यक्ति की रुचि में उसकी आयु की वृद्धि के साथ साथ परिवर्तन होता जाता है। यही कारण है कि बालकों और वयस्कों की रुचियों में विभिन्नता होती है। इतना ही नहीं, बालकों और बालिकाओं पुरुषों और

108 रुचियों की रुचियों में भी अंतर होता है।

(5) विचारों में विभिन्नता

विचारों की दृष्टि से व्यक्तियों की विभिन्नताओं को सामान्यतः स्वीकार किया जाता है। व्यक्तियों में इन विचारों के विभिन्न रूप मिलते हैं जैसे धार्मिक, अधार्मिक नैतिक, अनैतिक आदि। विचारों की विभिन्नताओं के अनेक कारणों में से मुख्य है आयु, लिंग, और विशिष्ट परिस्थितियाँ।

(6) सीखने में विभिन्नता

सीखने की दृष्टि में व्यक्तियों और बालकों में अनेक विभिन्नतायें दृष्टिगत होती हैं। कुछ बालक किसी कार्य जल्दी सीखते है, और कुछ देर में सीखते हैं।

(7) चरित्र में विभिन्नता

चरित्र की दृष्टि से सभी व्यक्तियों में कुछ न कुछ विभिन्नता का होना अनिवार्य है। व्यक्ति अनेक बातों से प्रभावित होकर एक विशेष प्रकार के चरित्र का निर्माण करते हैं।

(8) विशिष्ट योग्यताओं में भिन्नता

विशिष्ट योग्यताओं की दृष्टि से व्यक्तियों में अनेक विभिन्नताओं का अनुभव किया जाता है। इस संबंध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि सब व्यक्तियों में विशिष्ट योग्यतायें नहीं होती हैं। और जिनमें होती भी हैं,

108 उनमें उनकी मात्रा में अंतर अवश्य मिलता है।

(की) व्यक्तित्व में विभिन्नता

व्यक्तित्व की दृष्टि से व्यक्तियों की विभिन्नताएं हमें किसी न किसी रूप में आकर्षित करती हैं। हमें जीवन में अंतर्मुखी, बहिर्मुखी, सामान्य और असाधारण व्यक्तित्व के लोगों से कभी न कभी भेंट हो ही जाती है।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण

(1) वंशानुक्रम

व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पहला आधारभूत कारण है वंशानुक्रम। 'रूसो', 'पियरसन' इस कारण के समर्थक हैं। इनका कहना है कि व्यक्तियों की शारीरिक मानसिक और चारित्रिक विभिन्नताओं का कारण उनका वंशानुक्रम है। इसलिए स्वस्थ, बुद्धिमान और चरित्रवान माता पिता ~~कि~~ की ~~सन्तान~~ संतान भी स्वस्थ, बुद्धिमान और चरित्रवान होती है।

(2) वातावरण

~~क्योंकि~~ व्यक्तिगत विभिन्नताओं का दूसरा आधारभूत कारण है वातावरण। मनोवैज्ञानिकों ~~का~~ का मत है कि व्यक्ति जिस प्रकार के सामाजिक वातावरण में निवास करते हैं उसी के अनुरूप उनका व्यवहार, रहन सहन

109 आचार विचार भी होते हैं। अतः विभिन्न सामाजिक वातावरणों में निवास करने वाले व्यक्तियों में विभिन्नता का होना स्वाभाविक है। यही बात भौगोलिक और सांस्कृतिक वातावरण के विषय में कही जा सकती है। ठंडे देशों के निवासी लंबे, ~~गोरे~~ बलवान और परिश्रमी होते हैं जब कि गरम ~~देश~~ देशों में रहने वाले छोटे, निर्बल और आलसी होते हैं। विभिन्न सांस्कृतिक वातावरणों के कारण ही हिन्दुओं और मुसलमानों में विभिन्नतायें दृष्टिगोचर होते हैं।

(3) आयु व ~~वृद्धि~~ बुद्धि

व्यक्तिगत विभिन्नताओं का तीसरा ~~प्रमुख~~ कारण है आयु और बुद्धि। आयु के साथ-साथ बालक का शारीरिक मानसिक और संवेगात्मक विकास होता है। इसलिए विभिन्न आयु के बालकों में अंतर मिलता है। बुद्धि जन्मजात गुण होने के कारण किसी को प्रतिभाशाली और किसी को मूढ़ बनाकर अंतर की स्पष्ट रेखा खींच देती है।

(4) शिक्षा व आर्थिक दशा

व्यक्तिगत विभिन्नताओं का चौथा कारण है शिक्षा व आर्थिक दशा। शिक्षा व्यक्ति को शिष्ट, गंभीर और विचारशील बनाकर अशिक्षित व्यक्ति से रहो

 भिन्न कर देते है। गरीबी को सभी तरह के पापों और दुर्गुणों का कारण माना जाता है। गरीबी के कारण लोग चोरि और हत्या जैसे कार्यों को भी पाप नहीं समझते है।

(ई) लिंग - भेद

व्यक्तिगत विभिन्नता का अगला कारण है लिंग भेद। इस भेद के कारण बालकों और बालिकाओं की शारीरिक बनावट संवेगात्मक विकास की कार्य क्षमता में अंतर मिलता है। इसके अलावा टिकलर ने लिखा है " बालकों में शारीरिक कार्य करने की क्षमता अधिक होती है जबकि बालिका में स्मृतिक योग्यता अधिक होती है। बालक गणित और ~~विज्ञ~~ विज्ञान में बालिकाओ से आगे होते है। जबकि बालिका भाषा एवं सुन्दर हस्तलेख में बालकों से आगे होती है। ~~ब~~बालकों की रुचि साहसिक कहानियों में होती है जबकि बालिकाओं की रुचि प्रेम कहानियों और विवाहवर्णों में होती है।

(ख) व्यक्तिगत विभिन्नताओं का शैक्षिक महत्व

आधुनिक मनोवैज्ञानिक बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को अत्यधिक महत्व देते हैं। इनका

111 विश्वास है कि इन विभिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त करके शिक्षक अपने छात्रों का अवर्णनीय हित कर सकता है। शिक्षा के परंपरागत स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन करके उसे बालकों की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुकूल बना सकता है। उनका यह विश्वास अग्रलिखित तथ्यों पर आधारित है।

(i) छात्र वर्गीकरण की नयी विधि

विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आनेवाले बालकों में केवल आयु का ही अंतर नहीं होता है। उनमें शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक अंतर भी होते हैं। अतः उनका परंपरागत विधि के अनुसार कक्षाओं में विभाजन करना सर्वथा अनुचित है। वस्तुतः उनकी विभिन्नताओं के अनुसार उनका विभाजन समरूप समूहों में किया जाना चाहिए। इस प्रकार का सर्वोत्तम विभाजन उनकी मानसिक योग्यता के आधार पर किया जा सकता है। प्रत्येक कक्षा को श्रेष्ठ, सामान्य, निम्न, मानसिक योग्यता वाले बालकों के तीन समूहों में विभाजित किया जाना चाहिए। अमेरिका के अधिकांश स्कूलों में इसी प्रकार का विभाजन है।

(२) व्यक्तिगत शिक्षण की व्यवस्था

मानसिक योग्यताओं की विभिन्नताओं के कारण सामूहिक शिक्षण निस्सार और निष्प्रयोजन है। अतः व्यक्तिगत शिक्षण की व्यवस्था करना आवश्यक है। क्रो एवं क्रो ने लिखा है "विद्यालय का यह कर्तव्य है कि वह प्रत्येक बालक के लिए उपयुक्त शिक्षा की व्यवस्था करें। भले ही वह अन्य सब बालकों से कितना ही भिन्न क्यों न हो।"

(३) कक्षा का सीमित आकार

जब कक्षा में छात्रों की संख्या 40 या 50 होती है, तब शिक्षक के लिए उनसे व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करना असंभव हो जाता है। ऐसी दशा में वह उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है। अतः मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कक्षा के छात्रों की संख्या २० होनी चाहिए।

(४) शिक्षण पद्धतियों में परिवर्तन

सब बालकों के लिए एक ही प्रकार की शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग करना सर्वथा अनुचित और अमनोवैज्ञानिक है। इस बात की परम आवश्यकता है कि बालकों के व्यक्तिगत भेदों के अनुसार शिक्षण पद्धतियों में यथा शीघ्र परिवर्तन किया जाय। शिक्षण की यह नवीन

113 विधियाँ गतिशील, क्रियात्मक, और मनोवैज्ञानिक होनी चाहिये।

(5) गृहकार्य की नवीन धारणा

व्यक्तिगत भेदों के कारण सब बालकों में समान कार्य की समान मात्रा पूर्ण करने की क्षमता नहीं होती है। अतः प्राचीन ~~प्रकार~~ प्रथा के अनुसार सब बालकों को एक सा गृहकार्य देना उनके प्रति अन्याय करना है। आवश्यकता इस बात की है कि गृहकार्य देते समय उनकी क्षमताओं और योग्यताओं का पूर्ण ध्यान रखा जाये। इस दृष्टि से मंदबुद्धि और तीव्र बुद्धि बालकों को दिये जानेवाले गृहकार्य में अंतर किया जाना आवश्यक है।

(6) बालकों में विशेष रुचियों का विकास

यदि सब नहीं तो कुछ बालक ऐसे ~~एक~~ अवश्य होते हैं जिनमें कुछ विशेष रुचियाँ होती हैं। इन रुचियों का विकास करके उनका और उनके द्वारा समाज एवं देश का हित किया जा सकता है। अतः शिक्षक का यह कर्तव्य है कि बालकों की विशेष रुचियों का ज्ञान प्राप्त करके उनका अधिकतम विकास करने का प्रयास करें।

(7) शारीरिक दोषों के प्रति ध्यान

आधुनिक शिक्षा की माँग है कि बालकों के शारीरिक दोषों और असमर्थताओं के प्रति पूर्ण ध्यान दिया जाये ताकि वे अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा प्राप्त

115

करने से वंचित न रखा जाय। इस सम्बन्ध में हिक्सन ने चार सुझाव दिए हैं।

(1) जिन बालकों को कम दिखाई या सुनाई देता है, उन्हें कक्षा में सबसे आगे बैठाया जाय।

(2) निर्बल और कुपोषित बालकों के लिए विश्राम के खण्ड निश्चित किए जाय।

(3) प्रत्येक बालक की डॉक्टरी जाँच की जाय।

(4) प्रत्येक विद्यालय में डॉक्टर की नियुक्ति की जाय।

(8) लिंग भेद के अनुसार शिक्षण

लिंग भेदों के कारण बालकों और बालिकाओं की रुचियों, क्षमताओं, योग्यताओं, आवश्यकताओं आदि में पर्याप्त अंतर होता है। जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते हैं, वैसे वैसे यह अंतर अधिक ही अधिक स्पष्ट होता जाता है। इस दृष्टि से प्राथमिक कक्षाओं में अनेक लिए समान पाठ्य विषय हो सकते हैं। पर ~~आ~~ माध्यमिक कक्षाओं में इन विषयों में अंतर की स्पष्ट रेखा का ~~खींचा~~ खींचा जाना आवश्यक है।

(9) आर्थिक व सामाजिक दशाओं के अनुसार

बालकों के परिवारों की आर्थिक और सामाजिक दशाएँ उनके विचारों, दृष्टिकोणों, आदि में भेद उत्पन्न करती हैं। उनके इस भेद को ध्यान में रखकर ही उनके लिए उपयुक्त प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

115

(ib) पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण

विभिन्न आयु के बालकों एवं बालिकाओं की रुचियों, अभिवृद्धियों और आकांक्षाओं में इतना अधिक अंतर होता है कि अबकेवल समान पाठ्यक्रम का निर्माण करना अत्यंत अन्याय करना है। अतः पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिए और उसमें इतने विभिन्न प्रकार के विषय होने चाहिए कि किसी भी बालक या बालिका को अपनी इच्छानुसार विषयों का चयन करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

आशय यह है कि बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं का शिक्षा में अति महत्वपूर्ण स्थान है। इन विभिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त करके शिक्षक अपने छात्रों को विविध प्रकार के लाभ पहुंचा सकता है।

116

शिक्षा में मापन और मूल्यांकन

आधुनिक समय के मनोवैज्ञानिक, मनोविज्ञान को मानव व्यवहार का विज्ञान कहते है। और शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यवहार में परिवर्तन करना है। मानव व्यवहार में परिवर्तन किस रूप में किया जा रहा है, और क्या वह परिवर्तन ठीक दिशा में किया जा रहा है ? - यह जानने के लिए हम मानव व्यवहार का मापन करते है। शिक्षा और मनोविज्ञान के क्षेत्र में मापन का अभिप्राय है " मानव की दैहिक और मानसिक विशेषताओं को नियमों के आधार पर अंकों ~~के रूप~~ में या संख्याओं का रूप में अभिव्यक्त करना है। मापन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति के गुणों का मापन मात्रा के रूप में किया जा सकता है। मापन स्पष्ट रूप से परिमाण से संबन्धित है।

मापन की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए भिन्न - भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इसकी परिभाषा इन शब्दों में की है। कैम्पल - " नियमो के अनुसार वस्तुओं या घटनाओं को अंकों या संख्याओं में व्यक्त करना मापन है। स्टीवेन्स - " किन्हीं निश्चित स्वीकृत नियमों के अनुसार पदार्थों को अंक या संख्या प्रदान करने की प्रक्रिया मापन है।" |

मापन प्रतीक

किसी वस्तु के घटना अथवा गुण का मापन करते समय हम माप को किसी न किसी इकाई के रूप में

प्रकार करते है। जैसे:- इतना मीटर कपड़ा, इतने किलोग्राम वस्तु, इत्यादि। माप को दर्शानेवाली प्रदर्शित करने वाली इन भूमिका की इकाई को मापन प्रतीक कहते हैं।

अच्छे मापन की विशेषताएँ

(1) विश्वसनीयता
(2) वस्तुनिष्ठता
(3) वैधता
(4) व्यापकता
(5) विभेदीकरण
(6) उपयोगिता और व्यवहार शीलता

(1) विश्वसनीयता

एक अच्छी परीक्षा का सबसे मुख्य गुण उसके विश्वसनीयता है। विश्वसनीयता से तात्पर्य यह है कि उस परीक्षा से मिलनेवाले फलांक सदैव समान होने चाहिए। फलांक समान होना एक अच्छी परीक्षा की आवश्यकता है अतः विश्वसनीय परीक्षा वह परीक्षा है, जिसमें मूल्यांकन शून्यता से हो जाता है। यदि किसी परीक्षा के आधार पर मापन किया गया छात्र का अर्जित ज्ञान सा स्थाई प्रतीत होता है तो ऐसा परीक्षा को विश्वसनीय परीक्षा कहा जाता है।

(2) वस्तुनिष्ठता

एक अच्छे परीक्षण में वस्तुनिष्ठता की विशेषता होती है। वस्तुनिष्ठता का प्रभाव विश्वसनीयता

118 तथा वैद्यता पर भी पड़ता है। वस्तुनिष्ठता से तात्पर्य यह है कि किसी परीक्षक के व्यक्तिगत निर्णय का छात्र द्वारा प्राप्त किये गये अंकों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। एक उत्तर पुस्तिका को चाहे कितने परीक्षक जाँचें फलांक समान प्राप्त होने चाहिए। इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि फलांक प्रदान करने पर परीक्षक की व्यक्तिगत रुचि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वस्तुनिष्ठता का सम्बन्ध इस तथ्य से भी है कि ऐसे परीक्षणों के प्रश्नों की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसका एक ही अर्थ निकाला जा सके। ऐसे परीक्षण में छात्र प्रश्नों के उत्तर निश्चित निर्देशों के अनुसार देते हैं और परीक्षक भी ~~अंकदान के~~ अंकतालिका के अनुसार तथा उसकी सहायता से अंकप्रदान करता है। इसी कारण ऐसा परीक्षण पूर्ण रूप से निष्पक्ष होता है। ऐसे परीक्षणों में परीक्षक की मनोदशा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(इ) वैद्यता

एक अच्छी परीक्षा वैद्य भी होनी चाहिए। किसी परीक्षा को उस दशा में वैद्य कहा जाता है जब वह परीक्षा उसी योग्यता, ज्ञान, या कौशल का मापन करती है, जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है। वैद्यता का तात्पर्य यह है कि परीक्षा उन गुणों, तत्वों

तथा कुशलताओं की जाँच करती है जिसकी जाँच करना इसका उद्देश्य है। कुछ अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि निबंधात्मक परीक्षा विषय ज्ञान की जाँच न करके छात्रों की भाषा, लेखन शक्ति, आदि की जाँच करता है।

किसी भी उपलब्धि या ज्ञानोपार्जन परीक्षण के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण वैद्यता, विषयवस्तु की वैद्यता मानी जाती है। इसका कारण यह है कि किसी की सहायता से छात्रों की उपलब्धियों का मूल्यांकन करके उनका शैक्षिक विभाजन तथा वर्गीकरण किया जाता है इसी आधार पर कहा जाता है, ज्ञानोपार्जन परीक्षा में विषयवस्तु की वैद्यता अधिक महत्वपूर्ण है।

(c) व्यापकता

एक अच्छे परीक्षण में इतने अधिक प्रश्न होने चाहिए कि उन प्रश्नों की सहायता से कुछ योग्यता का मापन किया जा सके जिसके लिए इसका निर्माण किया गया है। व्यापकता के अभाव में किसी भी परीक्षा में वैद्यता नहीं आ सकती।

(d) विभेदीकरण

एक अच्छी परीक्षा में यह भी गुण होना चाहिए कि वह तीव्र-बुद्धि, सामान्य बुद्धि तथा मंद-बुद्धि में अंतर कर सके। इसी आधार पर शिक्षक छात्रों का वर्गीकरण करता है। अतः एक अच्छा परीक्षण वही कहा

120 जाना जिसमें प्रश्न कठिन भी हो तथा सरल भी हो। इसका तात्पर्य यह है कि परीक्षा में कुछ ऐसे प्रश्न होने चाहिए जिनको केवल ~~म~~ तीव्र बुद्धि के बालक ~~ही~~ ही हल कर सकें और कुछ प्रश्न ऐसे होने चाहिए जिनका उत्तर मंदबुद्धि के बालक भी दे सकें। प्रश्नों की रचना सरल से कठिन की ओर ~~(शिक्षण सूत्र) की~~ की जानी चाहिए ~~बालकों~~। एक अच्छे परीक्षण में विभेदीकरण का गुण अनिवार्य रूप से होना चाहिए। एक अच्छे परीक्षण के प्रश्न कठिन तथा सरल दोनों प्रकार के होते हैं।

(6) उपयोगिता और व्यवहार शीलता

एक अच्छे परीक्षण में ~~इसका~~ सा यह भी गुण होनी चाहिए कि इसका सफलता पूर्वक प्रयोग किया जा सके। व्यवहारिकता से हमारा आशय यह है कि ऐसे परीक्षणों के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति, सामग्री तथा तैयारी की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इसके प्रयोग में विशेष कठिनाई भी नहीं होनी चाहिए।

मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार मापन दो प्रकार का होता है। (1) परिमाणात्मक ~~होता है।~~ (2) गुणात्मक।

(1) परिमाणात्मक मापन

इसका तात्पर्य है कोई ऐसी वस्तु जिसकी भौतिक जगत में सत्ता हो जिसमें आकार, विजय वस्तु, परिमाण आदि गुण हो। जिसे आँखों से देखा जा सके जिसकी उपस्थिति का अनुभव किया जा सके। इन अर्थों में भौतिक मापन परिमाणात्मक होता है। उदा: लंबाई, दूरी, आदि। इन मापनों के लिए कुछ इकाइयों की आवश्यकता होती है। जैसे इंच, किलोग्राम, आदि। परिमाणात्मक मापन में जो विशेषतायें पायी जाती है उनका उल्लेख ~~मनोवैज्ञानिकों~~ ने इस प्रकार से किया है।

(1) इस प्रकार के मापन के लिए कुछ इकाइयों का प्रयोग किया जाता है।

(2) यह मापन अपने आप संपूर्ण होता है।

(3) किसी वस्तु का मापन स्थिर होता है।

(2) गुणात्मक मापन

इसका प्रयोग समाज विज्ञान के क्षेत्र में होता है। शिक्षा और मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी इसका प्रयोग होता है। यह मापन आत्मनिष्ठ तथा अनिश्चित होता है।

122 इसलिए यह जटिल भी होता है। गुणात्मक मापन में जो विशेषताएँ पायी जाती हैं उनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

(1) इसमें कोई शून्य बिन्दु नहीं होता यदि किसी (2) व्यक्ति बुद्धि परीक्षण में किसी बालक की बुद्धि लब्धि शून्य है तो उसका यह अर्थ कदापि नहीं कि उसमें बुद्धि है ही नहीं।

(2) परिमाणात्मक मापन पाँच कि.ग्राम और बारह इंच एक निश्चित परिमाण की ओर संकेत करता है लेकिन गुणात्मक या शैक्षिक मापन में ऐसा नहीं है। यदि किसी छात्र ने 200 शब्दों का श्रुतलेख (Dictation) लिखा। लिखने में 40 अशुद्धियाँ कर दी तो हम यह नहीं कह सकते कि वह लिखने में कमजोर है।

मूल्यांकन

मूल्यांकन दो शब्दों के मेल से बना है। मूल्य और अंकन। अर्थात किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति के मूल्य को अंकने की प्रक्रिया। जो हम अपने दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी रूप में मूल्यांकन करते रहते हैं। यदि केशव किया बड़ा संवाभावी है।

क्या 20 कि का स्वभाव बहुत अच्छा है।

123 इस मूल्यांकन ही तो है। जीवन में क्या करणीय है और क्या करणीय नहीं है उसका बोध भी मूल्यांकन के द्वारा संभव है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में मूल्यांकन केवल नवीन शब्द है। इसका प्रयोग व्यापक अर्थ में होता है। इसमें आत्मनिष्ठता होती है। अर्थात वस्तु, व्यक्ति, घटना के संबन्ध में हमारी अपनी सम्मिति भी सम्मिलित होती है। मूल्यांकन की प्रक्रिया के द्वारा हम न केवल छात्रों को विषय ज्ञान के संबन्ध में सूचनाएँ प्रदान करते हैं वरन उनके व्यक्तित्व के विकास के बारे में भी आवश्यक तथ्य प्राप्त करता है। मूल्यांकन द्वारा इस बात का फैसला किया जाता है कि कौन सी वस्तु अच्छी है, कौन सी बुरी। किसी वस्तु की उपयोगिता का निर्णय मूल्यांकन की निर्णयात्मक प्रक्रिया द्वारा की हो सकता है।

परिभाषा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (N.C.E.R.T.) "मूल्यांकन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा ज्ञात किया जाता है कि उद्देश्य की सीमा तक प्राप्त किये गये हैं। कक्षा में दिये गये अधिगम, अनुभव, कहाँ तक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं और शिक्षा के उद्देश्य कहाँ तक पूरे हुए हैं।"

124

मूल्यांकन की मान्यताएं

(1) शिक्षा का कार्य व्यक्तियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन करना है। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी नवीन विचार कौशल तथा अभिरुचियाँ प्राप्त करता है।

(2) मूल्यांकन की प्रक्रिया द्वारा इस बात की जानकारी प्राप्त की जाती है — विद्यार्थियों ने वांछित उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त किया है।

(3) मानवव्यवहार बहुत ही जटिल है। इसलिए इसका मूल्यांकन किसी एक तथ्य संख्या द्वारा संभव नहीं है। इसलिए व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों का मापन आवश्यक है। मूल्यांकन केवल कागज, कलम, और परीक्षा तक सीमित नहीं किया जा सकता। इसकेलिए सभी विधियाँ अपनानी पड़ती हैं कि जिनसे इस बात का पता लगता है कि वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में विद्यार्थियों द्वारा क्या प्रगति हुई है और क्या प्रगति कर रहे हैं।

मापन तथा मूल्यांकन के कार्य और उद्देश्य

मापन और मूल्यांकन द्वारा जिन उद्देश्यों की पूर्ति होती है उन्हें इस प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

125 (ग) पूर्व कथन

पूर्व कथन का अभिप्राय है वर्तमान की आधार पर भविष्य के संबन्धों में अनुमानों मापन की परिस्थितियों के आधार पर कहा जा सकता है कि छात्र किसी विषय विशेष या व्यवसाय विशेष में आगे जाकर कितनी प्रगति करेंगे।

(घ) परामर्श व निर्देशन

विद्यार्थियों की विभिन्न आयामों का मापन करके यह निश्चित किया जा सकता है कि छात्र को किन किन विषयों का अध्ययन करना चाहिए अथवा उसे किस प्रकार का पाठ्यक्रम लेना चाहिए? उसे शैक्षिक निर्देशन कह सकता है। जो छात्र विद्यालय की अंतिम कक्षा में ही उनकी रुचियों तथा अभियोग्यताओं का अध्ययन कर उनकी शारीरिक रचना और बुद्धि स्तर के अनुकूल व्यवसाय चुनने में निर्देश दिया जा सकता है। इसे व्यवसाय निर्देश कह सकता है।

(ङ) तुलना

छात्रों में समता, ज्ञान, बुद्धि, तथा अन्य गुण शीलगुण दृष्टि से व्यक्तिगत भेद पाये जाते हैं। मापन तथा मूल्यांकन का यह कार्य भी व्यक्तिगत भेदों वाले छात्रों का तुलनात्मक अध्ययन है। इसके साथ ही छात्रों के प्रारंभिक व्यवहार की तुलना कर उसके व्यवहार

को भी आदि है। जिससे इस बात की जानकारी प्राप्त हो जाती है कि उन्होंने कितनी प्रगति की है?

(च) संशोधन

मापन और मूल्यांकन के द्वारा बालकों की आवश्यकताओं, उनकी विशेषताओं तथा उनकी सीमाओं का ज्ञान होता है। इस ज्ञान के आधार पर शिक्षक अपने अध्यापन पद्धति और पाठ्यक्रम में संशोधन कर सकते है तथा पाठ्य सामग्री में भी आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है।

(छ) वर्गीकरण

विद्यार्थियों की विभिन्न योग्यताओं और गुणों का मापन करके उन्हें विभिन्न वर्गों या श्रेणियों में सरलता से बाँटा जा सकता है। इस संबन्ध एक बात और भी है मापन तथा मूल्यांकन के आधार पर छात्रों का जो मापन किया जाता है उसको देखते हुए उन्हें एक कक्षा से दूसरी कक्षा में प्रोन्नत भी किया जा सकता है।

मूल्यांकन का महत्व

मनोवैज्ञानिक द्वारा मूल्यांकन के उपयोगिता के संबन्ध में जो बातें कही जा सकती है उन्हें इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

(7) सीखने की प्रेरणा

जब विद्यार्थी यह जान जाता है कि उनके सीखने का मापन परीक्षाओं द्वारा होगा तो वे अच्छे प्रकार से सोच समझकर और मन लगाकर सीखते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों को सीखने की प्रेरणा मिलती है। मूल्यांकन द्वारा छात्रों को अपनी कमियों और सीमाओं का पता लगता है। वे इन्हें दूर करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन छात्रों को अपनी कमियां दूर करने के लिए भी प्रेरणा का काम करता है।

(8) पाठ्यक्रम में परिवर्तन

मूल्यांकन के द्वारा बालकों की विशेषताओं, उनकी कमियों तथा आवश्यकताओं का पता चल जाता है और इस आधार पर पाठ्यक्रम में वांछित परिवर्तन किया जाता है। इस प्रकार छात्रों के व्यवहार परिवर्तन की दृष्टि से यह एक आवश्यक कार्य है।

(9) शिक्षण में उन्नति

मूल्यांकन के द्वारा यह भली भांति जाना जा सकता है कि शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति किस सीमा तक की जा सकती है? इसके अतिरिक्त मूल्यांकन के द्वारा हम शिक्षण की सफलता असफलता का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अंक प्रणाली मूल्यांकन के अ

 इन शिक्षण विधियों को अपना सकता है उनके द्वारा शिक्षण में अधिक सफलता है।

(5) उद्देश्यों के स्पष्टीकरण में सहायक

मूल्यांकन के द्वारा निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जाता है।

(1) अध्यापकों को अपने कक्षा में कितनी सफलता प्राप्त हुई है?

(2) अध्यापकों को किन-किन विधियों को प्रयोग करना चाहिए?

(3) छात्रों के स्तर पर अध्यापक अपने शिक्षण को किस प्रकार प्रभावी बना सकता है?

यह ज्ञान अध्यापकों को शिक्षण उद्देश्यों के स्पष्टीकरण में सहायता प्रदान करता है।

(6) निर्देशन और परामर्श में सहायक

मूल्यांकन के द्वारा बालकों की व्यक्तिगत भेद बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। इन व्यक्तिगत भेदों के आधार पर विद्यार्थियों को समुचित रूप से निर्देशन किया जा सकता है।

(7) विद्यालय में सुधार

मूल्यांकन के द्वारा विद्यालय के क्रिया कलापों

129 सुधार लाया जा सकता है। शिक्षकों की आवश्यकतानुसार
पाठ्यक्रम निर्माण, उपयुक्त शिक्षण पद्धति, उचित
निरीक्षण, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का उपयुक्त नियोजन
आदि पहलुओं पर मूल्यांकन द्वारा सुधार किया
जा सकता है।

130 मापन और मूल्यांकन में अंतर

मापन	मूल्यांकन
(1) मापन का क्षेत्र सीमित होता है।	(1) मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक होता है। इसमें छात्र के संपूर्ण व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।
(2) मापन द्वारा व्यक्तित्व के किसी एक पक्ष पर बल दिया जाता है।	(2) मूल्यांकन में व्यक्ति के सभी पक्षों पर बल दिया जाता है, मूल्यांकन में व्यक्ति की सम्पूर्ण परीक्षा ली जाती है। मूल्यांकन में परीक्षाओं का समावेश होता है।
(3) मापन द्वारा किसी व्यक्ति की योग्यता या गुण की मात्रा ज्ञात की जाती है। मापन गुणात्मक तथा संख्यात्मक हो सकता है।	(3) मूल्यांकन द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि किसी योग्यता या गुण की संख्यात्मक तथा गुणात्मक मात्रा उपयुक्त है या नहीं।
(4) मापन में किसी वस्तु या तथ्य का संख्यात्मक चित्रण होता है।	(4) मूल्यांकन में मापन के साथ परिमाणात्मक चित्रण भी सम्मिलित किया जाता है।
(5) मापन के इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता है "कोई गुण कितनी मात्रा में है"?	(5) मूल्यांकन में इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता है "कोई गुण कितना अच्छा है"?
(6) मापन किसी छात्र के संबंध में स्पष्ट धारणा व्यक्त नहीं करता।	(6) मूल्यांकन के आधार पर किसी छात्र के विषय में स्पष्ट धारणा बनाई जा सकती है।

13) (7) मापन में अधिक श्रम, समय और (7) मूल्यांकन में अधिक समय, धन व श्रम की आवश्यकता नहीं होती है और श्रम की आवश्यकता होती है। मापन का कार्य थोड़े समय में ही हो जाता है। मूल्यांकन में अनेक परीक्षाओं को सम्मिलित किया जाता है।

(8) एकांगी होता है। (8) बहुमुखी होता है।

(9) मापन का उद्देश्य निर्धारित होता है। (9) मूल्यांकन का उद्देश्य व्यापक होता है।

(10) मापन में अंक प्रदान किया जाता है। उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच करने के पश्चात उनमें अंक प्रदान करना ही मापन है। (10) मापन द्वारा अंक प्रदान करने के पश्चात अंकों का मूल्य निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मूल्य निर्धारण करना ही मूल्यांकन है।

शैक्षिक महत्व

आज का युग विज्ञान का युग है। प्रत्येक विषय में विज्ञान का महत्व दिया जा सकता। विज्ञान ने जीवन में अनेक परिवर्तन किये हैं। मूल्यांकन ने भी शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। मूल्यांकन की सहायता से हम छात्र द्वारा प्राप्त किये गये शिक्षण उद्देश्यों की जानकारी कर सकते। मूल्यांकन का अर्थ मूल्यों के निर्धारण करने से होता है। इसका प्रयोग किसी भी विचार, कार्य, विधि तथा वस्तु के विषय में किया जा सकता है। स्पष्ट है कि शैक्षिक प्रक्रिया में मूल्यांकन का विशेष

महत्व है
132

मूल्यांकन का महत्व

मूल्यांकन की उपयोगिता, लाभ या महत्व इस प्रकार है।

(1) शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान

मूल्यांकन का शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है मूल्यांकन द्वारा यह जानकारी प्राप्त की जाती है कि शिक्षण उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया जा सकता है।

(2) पाठ्यक्रम की प्रभावोत्पादकता की जाँच

आधुनिक समय में इस बात की विशेष आवश्यकता है कि यह जाँच की जाय कि हमारा पाठ्यक्रम कितना प्रभाव पूर्ण है अर्थात यह पाठ्यक्रम छात्रों की आवश्यकताओं को किस सीमा तक पूरा करता है आधुनिक समय में प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान की वृद्धि हो रही है। इसके कारण पाठ्यक्रम पर बोझ बढ़ता जा रहा है। शिक्षा शास्त्री इस बात का प्रयास कर रहे हैं कि पाठ्य क्रम को किस प्रकार अधिक से अधिक उपयोगी बनाया जाय। मूल्यांकन द्वारा पाठ्यक्रम की प्रभावोत्पादकता की जाँच करके उसमें आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं।

(3) सीखने की प्रक्रिया की प्रगति की जानकारी

मूल्यांकन द्वारा इस बात की जानकारी की जाती है कि छात्रों ने सीखने की प्रक्रिया में इतनी प्रगति की है। अध्यापक के लिए यह जानकारी अधिक आवश्यक होती है। इस जानकारी के आधार पर वह अपनी शिक्षण विधियों में सुधार कर सकता है।

(4) निर्देशन देना

मूल्यांकन द्वारा छात्रों को शैक्षिक निर्देशन देना संभव होता है। निर्देशन देने से पूर्व यह जानकारी करना आवश्यक होता है कि छात्र का मानसिक स्तर क्या है। उसकी रुचियाँ तथा क्षमताएँ क्या है?

(5) धारणाओं की जाँच

जब विद्यालय में विकास के कुछ कार्यक्रम बनाये जाते हैं तो कुछ धारणाओं का निर्माण किया जाता है। उदाहरण के लिए यह देखा जाता है कि

(1) क्या गृह कार्य देने से छात्रों में स्वाध्याय की आदत का विकास होता है?

(2) क्या नियमित खेल कूद का आयोजन करने से छात्रों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है??

(3) क्या वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन करने छात्रों में बोल पढ़ना बढ़ाई की क्षमता है?

134

(5) कक्षा विद्यालय के शारीरिक श्रम करके छात्रों श्रम के प्रति सम्मान की भावना उदय होती है।

(6) प्रतियोगिता की भावना

मूल्यांकन से छात्रों में प्रतियोगिता की भावना उदय होती है। वे एक दूसरे से आगे बढ़ने निकलने के प्रयास मे और अधिक परिश्रम करते हैं। इस प्रकार उनमें और अधिक कार्य करने की भावना उत्पन्न होती है और वे लगन से कार्य करते हैं।

(7) समस्याओं की जानकारी

मूल्यांकन द्वारा शिक्षक को यह ज्ञान हो जाता है कि छात्रों की समस्याएँ क्या हैं? समस्याओं की जानकारी के पश्चात उन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

(8) शिक्षकों को अपनी सफलता का ज्ञान

मूल्यांकन द्वारा शिक्षक को अधिक यह जानकारी हो जाती है कि उसको अपने शिक्षण में कहाँ तक सफलता मिली है? अर्थात वह कहाँ तक अपने कार्य करने में सफल रहा है।

(9) शिक्षण विधियों की जाँच

मूल्यांकन द्वारा शिक्षक को यह जानकारी हो

135 जाती है कि उन्होंने जिन शिक्षण विधियों का प्रयोग किया है वे कहाँ तक प्रभावोत्पादक हैं और क्या इन शिक्षण विधियों में कुछ परिवर्तन आवश्यक है? इस प्रकार मूल्यांकन शिक्षक को शिक्षण के परिणामों तथा छात्रों की उपलब्धियों का ज्ञान कराता है।

(ब) माध्यमिक शिक्षा आयोग ने लिखा है मूल्यांकन वह प्रमुख साधन है जिससे समाज को यह विश्वास हो जाता है कि विद्यालय का कार्य किया जाने संतोषपूर्वक ढंग से किया जा रहा है और जो छात्र वहाँ अध्ययन कर रहे थे, समुचित प्रकार की शिक्षा पा रहे हैं, और आयु के अनुकूल स्तर प्राप्त कर रहे हैं।

136

~~अपसामान्य~~ विभिन्नता

स्मृति एवं विस्मृति

स्मृति का स्वरूप

स्मृति एक जटिल शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया है जिसे हम थोड़े से शब्दों में इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं। जब हम किसी वस्तु को छूते, देखते, सुनते, सूंघते ~~हैं~~ हैं तब हमारा ज्ञानवाहक तंतु इस अनुभव को हमारे मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्र में पहुँचा ~~देते~~ देते हैं। ज्ञान केन्द्र में उस अनुभव की प्रतिमा बन जाती है। इसे 'छाप' कहते हैं। यह छाप वास्तव में उस अनुभव का स्मृति चिह्न होती है। यह अनुभव कुछ समय तक हमारे चेतन मन में रहने के बाद अचेतन मन में चला जाता है और हम उसको भूल जाते हैं। उस अनुभव को अचेतन मन में संचित रहने और चेतन मन में लाने की प्रक्रिया को स्मृति कहते हैं।

138

स्मृति की परिभाषा – वैज्ञानिकों का विचार एवं परिभाषा

वुडवर्थ :- "जो बात पहले सीखी जा चुकी है उसे स्मरण रखना ही स्मृति है।"

Rayborn :- "अपने अनुभवों को संचित रखने और उनको प्राप्त करने के कुछ समय बाद चेतना के क्षेत्र में पुनः लाने की जो शक्ति होती है उसको स्मृति कहते हैं।"

स्मृतियों के प्रकार

(1) व्यक्तिगत स्मृति
(2) अव्यक्तिगत स्मृति
(3) स्थायी स्मृति
(4) तात्कालिक स्मृति
(5) निष्क्रिय स्मृति
(6) तार्किक स्मृति
(7) यांत्रिक स्मृति
(8) आदत स्मृति
(9) शारीरिक स्मृति
(10) इन्द्रियानुभव स्मृति
(11) शुद्ध स्मृति

138 (i) व्यक्तिगत स्मृति

इस स्मृति में हम अपने अतीत के व्यक्ति० अनुभवों को स्मरण करते है। हमें यह सदैव स्मरण रहता है कि अमुक के समय हमारी सहायता किसने की थी?

(ii) अव्यक्तिगत स्मृति

इस स्मृति में हम बिना व्यक्तिगत अनुभव किये बहुत सी पिछली बातों को याद रखते है। हम यह अनुभवों को साधारणतः पुस्तकों से प्राप्त करते है। अतः यह अनुभव सब व्यक्तियों में समान होते है।

(iii) स्थाई स्मृति

इस स्मृति में हम याद की हुई बात को कभी नहीं भूलते है। यह स्मृति बालकों की अपेक्षा वयस्कों में अधिक होती है।

(iv) तात्कालिक स्मृति

इस स्मृति में हम याद की हुई बात को तुरन्त सुना देते हैं। पर हम उसको साधारणतः कुछ समय के बाद भूल जाते हैं। यह स्मृति सब व्यक्तियों में एक सी नहीं होती है।

139 (5) ~~(सक्रिय स्मृति)~~

(5) सक्रिय स्मृति

इस स्मृति में हमें अपने पिछले अनुभवों का पुनःस्मरण करने के लिए प्रयास करना पड़ता है। वर्णनात्मक निबन्ध लिखते समय घटनाओं की उससे संबंधित तथ्यों का स्मरण करने के लिए प्रयास करना पड़ता है।

(6) निष्क्रिय स्मृति

इस स्मृति में हमें अपने पिछले अनुभवों का पुनः स्मरण करने में किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता है। ~~पढ़ी हुई~~ पढ़ी हुई कहानी को सुनते समय घटनाओं की उसकी घटनाएँ स्वतः याद आ जाती है।

(7) तार्किक स्मृति

इस स्मृति में हम किसी बात को भली भाँति सोच समझकर और तर्क करके स्मरण करते है। इस प्रकार प्राप्त किये जानेवाले ज्ञान वास्तविक होता है।

(8) यांत्रिक स्मृति

इस स्मृति में हम किसी तथ्य की या किसी प्रश्न के उत्तर को बिना सोचे समझे रटकर स्मरण करते है।

(9) आदत स्मृति

इस स्मृति में हम किसी कार्य को बार-बार

(३) पुन: स्मरण

141

स्मृति का तिसरा अंग है पुनः स्मरण। इसका अर्थ है कि सीखी हुई बात को अचेतन मन से चेतन मन में लाना। जो बात जितनी अच्छी तरह धारण की गयी है, उतनी ही सरलता से उसका पुनस्मरण होता है।

(४) पहचान

चौथा अंग है पहचान, जिसका अर्थ है कि याद आनेवाली बात में किसी प्रकार की गलती न करना। उदा: हम पाँच वर्ष पूर्व मोहनलाल नामक एक व्यक्ति से दिल्ली में मिले। जब हम उस से फिर मिलते है, तब इसके संबंध में सब बातों का ठीक पुन:स्मरण हो जाता है।

अच्छी स्मृति के लक्षण

(१) शीघ्र अधिगम,

अच्छी स्मृति का पहला गुण है जल्दि सीखना। जो व्यक्ति किसी बात को शीघ्र सीख लेता है, उसकी स्मृति अच्छी समझी जाती है।

(२) उत्तम धारण शक्ति

अच्छी स्मृति का दूसरा गुण है सीखी हुई बात को बिना दोहराये देर तक स्मरण रहना। जो व्यक्ति कि बातें को कितने अधिक समय मस्तिष्क में धारण रख

सकता है - उसकी स्मृति उतनी ही अधिक अच्छी होती है।

(3) शीघ्र पुनःस्मरण

अच्छी स्मृति का तीसरा गुण है यह। सीखी हुई बात का शीघ्र याद आना, जिस व्यक्ति को सीखी हुई बात जितनी जल्दी याद आती है, उसकी स्मृति उतनी ही अधिक अच्छी होती है।

(4) शीघ्र पहचान

अच्छी स्मृति का चौथा गुण है यह। किसी बात का शीघ्र पुनःस्मरण भी पर्याप्त नहीं है, इसके साथ यह भी आवश्यक है कि आप शीघ्र ही यह जान जाएं कि आप जिस बात को स्मरण करना चाहते हैं, वही बात आपको याद आती है।

(5) अनावश्यक बात की विस्मृति

अच्छी स्मृति का पाँचवा गुण है यह अनावश्यक या व्यर्थ की बात को भूल जाना।

(6) उपयोगिता

अच्छी स्मृति का अंतिम गुण है उपयोगिता इसका अभिप्राय यह है कि वही स्मृति अच्छी होती है, जो अवसर आने पर उपयोगी सिद्ध होती है। ~~इसलिए~~ आ... परीक्षा देते समय ...

सीखने में सफल हो जाता है तो उसकी स्मृति अच्छी है।

143

स्मृति के नियम

(1) आदत का नियम

इस नियम के अनुसार जब हम किसी विचार को बार-बार दोहराते हैं, तब हमारे मस्तिष्क में उसकी छाप इतनी गहरी हो जाती है कि हममें बिना विचारे उसको व्यक्त करने की आदत पड़ जाती है।

(2) निरंतरता का नियम

इस नियम के अनुसार सीखने की प्रक्रिया में जो अनुभव विशेष रूप से स्पष्ट होते हैं, वे हमारे मस्तिष्क में कुछ समय तक आते रहते हैं। अतः हमें उसको स्मरण रखने के लिए किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। उदाहरणार्थ किसी मधुर संगीत को सुनने या किसी दर्दनात्मक घटना को देखने के बाद हम लाख प्रयत्न करने पर भी उसको भूल नहीं पाते।

(3) परस्पर संबन्ध का नियम

इस नियम को साहचर्य का नियम भी कहते हैं। इस नियम के अनुसार जब हम एक ... अनुभव से संबंधित कर देते हैं

144

तब इनमें से किसी एक का स्मरण होने पर हमें दूसरे का स्वयं ही स्मरण हो जाता है।
उदा: जो बालक गाँधीजी के जीवन से परिचित है, उनको सत्याग्रह के सिद्धांतों या भारत छोड़ो आंदोलन से सरलता पूर्वक परिचय किया जा सकता है।

स्मरण की विधियाँ

(1) पूर्ण विधि
(2) खण्ड विधि
(3) मिश्रित विधि
(4) प्रगतिशील विधि
(5) अंतरयुक्त विधि
(6) अक्रीय विधि
(7) निष्क्रीय विधि
(8) स्वर विधि
(9) रटने की विधि
(10) निरीक्षण विधि
(11) क्रिया विधि

विस्मृति

विस्मृति का अर्थ व परिभाषा

स्मृति की भाँति विस्मृति भी एक मानसिक क्रिया है। अंतर केवल इतना है कि विस्मृति एक निष्क्रीय तथा नकारात्मक क्रिया है।

जब हम कोई नई बात सीखते हैं या नया अनुभव प्राप्त करते हैं, तब हमारे मस्तिष्क में उसका चित्र अंकित हो जाता है। हम अपनी स्मृति की सहायता से उस अनुभव को अपनी चेतना में फिर लाकर उसका स्मरण कर सकते हैं। पर कभी-कभी हम ऐसा करने में सफल नहीं होते हैं। हमारी यही असफल क्रिया विस्मृति कहलाती है।

परिभाषा

मन - " सीखी हुई बात को स्मरण रखने या पुन: स्मरण करने कि की असफलता को विस्मृति कहते हैं। "

ड्रेवर - " विस्मृति का अर्थ है किसी समय प्रयास करने पर भी किसी पूर्व अनुभव का स्मरण करने या पहले सीखते हुए किसी कार्य को करने में असफल

विस्मृति का प्रकार

(1) सक्रीय विस्मृती
(2) निष्क्रीय विस्मृती

(i) सक्रीय विस्मृति

इस विस्मृति का कारण व्यक्ति है। ~~वे~~ वह स्वयं किसी बात को भूलने का प्रयत्न करके उसे भुला देता है।

(2) निष्क्रीय विस्मृति

इस विस्मृति का कारण व्यक्ति नहि है। वह प्रयास न करने पर भी किसी बात को स्वयं भूल जाता है।

→

147

चिंतन : तर्क

चिंतन

मनुष्य को संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा गया है। इसका कारण है उसका चिंतनशील होना। जीवधारियों में मनुष्य ही सर्वाधिक चिंतनशील है और यही चिंतन मनुष्य और उसके समाज के विकास का कारण हुई।

मनुष्य के सामने — कभी कभी किसी समस्या का उपस्थित होना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में वह समस्या का समाधान करने के उपाय सोचने लगता है। वह इस बात पर विचार करना आरंभ कर देता है कि समस्या को किस प्रकार सुलझाया जा सकता है। उसके इस प्रकार सोचने या विचार करने की क्रिया को चिंतन कहते हैं।

परिभाषायें

रॉस :- "चिंतन मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक पहलू है। यमन के बातों से संबंधित मानसिक क्रिया है।"

रायबर्न (Ryburn) :- "चिंतन इच्छा संबन्धी प्रक्रिया है, जो किसी असंतोष के कारण आरंभ होती है और प्रयास एवं त्रुटि के आधार पर चलती हुई उस अंतिम स्थिति पर पहुँच जाती है, जो इच्छा को संतुष्ट करती है।"

चिंतन की विशेषताएँ

(1) चिंतन मानव का विशिष्ट गुण है जिसकी सहायता से वह अपनी बर्बर अवस्था (Cultivated) से सभ्य अवस्था तक पहुँचने में सफल हुआ है।

(2) चिंतन किसी इच्छा, असंतोष, कठिनाई, या समस्या के कारण आरंभ होनेवाली एक मानसिक प्रक्रिया है।

(3). चिंतन किसी वर्तमान या भावी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए एक प्रकार का व्यवहार है। उदा: हम अँधेरे होने पर बिजली का Switch दबाकर प्रकाश कर लेते हैं, और मार्ग पर चलते हुए सामने से आनेवाली मोटर को देखकर एक ओर हट जाते हैं।

(4) चिंतन उस समय आरंभ होता है, जब व्यक्ति के समक्ष कोई समस्या उपस्थित होती है और वह उसका समाधान खोजने का प्रयत्न करता है।

(5) चिंतन की सहायता से व्यक्ति अपनी समस्या का समाधान करने के लिए अनेक उपायों पर विचार करता है। अंत में वह उनमें से एक का प्रयोग करके अपनी समस्या का समाधान करता है।

(6) इस प्रकार चिंतन पूर्ण और जटिल मानसिक प्रक्रिया है, जो समस्या की उपस्थिति के समय से आरंभ होकर उसके समाधान के अंत तक चलती रहती है।

चिंतन के प्रकार

चिंतन चार प्रकार का होता है।

(1) प्रत्यक्षात्मक चिंतन
(2) प्रत्ययात्मक चिंतन
(3) कल्पनात्मक चिंतन
(4) तार्किक चिंतन

(1) प्रत्यक्षात्मक चिंतन

इस चिंतन का संबन्ध पूर्व अनुभवों पर आधारित वर्तमान की वस्तुओं से होता है। माता-पिता के बाज़ार से लौटने पर यदि बालक को उनसे काफी दिनों तक Tofee मिल जाती है, तो जब भी वे बाजार से लौटते हैं तभी Tofee का विचार उसके मस्तिष्क में आ जाता है। और वह दौड़ता हुआ उनके पास जाता है। यह निम्नस्तर का चिंतन है। अतः यह विशेष रूप से पशुओं और बालकों में पाया जाता है। इसमें भाषा और नाम का प्रयोग नहीं किया जाता है।

(2) प्रत्ययात्मक चिंतन

इस चिंतन का संबन्ध पूर्व निर्मित प्रत्ययों से होता है, जिनकी सहायता से भविष्य के किसी निश्चय पर पहुँचा जाता है। कुत्ते को देखकर बालक अपने मन में प्रत्यय का निर्माण कर लेता है।

अतः जब वह भविष्य में कुत्ते को फिर देखता है, तब वह उसकी ओर संकेत करके कहता है 'कुत्ता'। इस चिंतन में भाषा और नाम का प्रयोग किया जाता है।

(४) कल्पनात्मक चिंतन

इस चिंतन का संबन्ध पूर्वानुभवों पर आधारित भविष्य से होता है। जब माता पिता बाजार जाता है तब बालक कल्पना करता है कि वे वहाँ से लौटने पर उसके लिए Tofee लायेंगे। इस चिंतन भाषा और नाम का प्रयोग नहीं किया जाता है।

(५) तार्किक चिंतन

यह सबसे उच्च प्रकार का चिंतन है। इसका संबन्ध किसी समस्या के समाधान से होता है। John. T.B ने इसको विचारात्मक चिंतन की संज्ञा दी है।

चिंतन के विकास के उपाय

क्रो व क्रो के शब्दों में "स्पष्ट चिंतन की योग्यता सफल जीवन के लिए आवश्यक है। जो लोग उद्योग, कला या किसी मानसिक कार्य में दूसरों से आगे होते हैं, वे अपनी प्रभावशाली चिंतन की योग्यता में साधारण व्यक्तियों से श्रेष्ठ होते हैं।"

151 इस कथन से चिंतन का महत्व स्पष्ट हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षक बालकों की चिंतन शक्ति का विकास करें। वह ऐसा अधोलिखित उपायों की सहायता से कर सकता है।

(1) भाषा, चिंतन की माध्यम और अभिव्यक्ति का आधार शिला है। अतः शिक्षक को बालकों के भाषा ज्ञान में वृद्धि करनी चाहिए।

(2) ज्ञान चिंतन का मुख्य स्तंभ है। अतः शिक्षक को बालकों के ज्ञान का विस्तार करना चाहिये।

(3) तर्क, वाद-विवाद और समस्या समाधान चिंतन शक्ति को प्रयोग करने का अवसर देते हैं। अतः शिक्षक को बालकों को इन बातें के लिए अवसर देने चाहिए।

(4) उत्तरदायित्व चिंतन को प्रोत्साहित करता है। अतः बालकों को उत्तरदायित्व के कार्य सौंपने चाहिए।

(5) रुचि और जिज्ञासा का चिंतन में महत्वपूर्ण स्थान है। अतः शिक्षक को बालकों की इन प्रवृत्तियों को जागृत रखना चाहिए।

(6) शिक्षक को अपने अध्यापन के समय बालकों से विचारात्मक प्रश्न पूछकर उनकी चिंतन की योग्यता में वृद्धि करनी चाहिए।

(7) शिक्षक को बालकों को विचार करने और अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

(8) शिक्षक को प्रश्न पत्र में ऐसे प्रश्न देने चाहिए जिनके उत्तर बालक भली भाँति विचार करने के बाद ही दे सकें।

(9) शिक्षक को बालकों में निष्क्रिय रहने, स्वीकार करने की आदत नहीं पड़ने देनी चाहिए। क्योंकि इस प्रकार का रहना चिंतन का शत्रु है।

तर्क

चिंतन का उत्कृष्ट रूप और जटिल मानसिक प्रक्रिया है तर्क। इसे साधारणतः औपचारिक नियमों से संबन्ध किया जाता है। और पशु और मानव इस बात का अनुभव किये बिना तर्क का प्रयोग करते रहते हैं। कुत्ता अपने स्वामी को कार (car) में बैठकर जाते हुए देखकर घर में वापस आ जाता है, बालक कुल्फी बेचनेवाले की आवाज़ सुनकर घर से बाहर को दौड़ा हुआ जाता है। इन सब कार्यों का आधार तर्क है।

उदा: हम अपना कलम कहीं रखकर भूल जाते हैं हम विचार करते हैं कि हमने उससे अंतिम बार कब लिखा था। बैठने का कमरे में था? इस प्रकार तर्क करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि कलम बैठने के कमरे में होगा। हम वहाँ जाते हैं और हमें मिल जाता है। इस प्रकार हमारी समस्या का समाधान हो जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि तर्क ...

कारण में संबंध स्थापित करके हमें किसी निष्कर्ष पर
25 पहुँचने या किसी समस्या का समाधान करने में सहायता देता है।

परिभाषा

गन :- "तर्क उस समस्या को हल करने के लिए अतीत के अनुभवों को सम्मिलित रूप प्रदान करता है। इसको केवल पिछले समाधानों का प्रयोग करके हल नहीं किया जा सकता है।"

स्किनर :- "तर्क शब्द का प्रयोग कारण और प्रभावों के संबंधों की मानसिक स्वीकृति को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।"

तर्क के सोपान

तर्क में पाँच सोपानों की उपस्थिति है।

(1) समस्या की उपस्थिति :-

तर्क का आरंभ किसी समस्या की उपस्थिति से होता है। समस्या की उपस्थिति व्यक्ति को उसके बारे में विचार करने के लिए बाध्य करती है।

(2) समस्या की जानकारी :-

व्यक्ति समस्या का अध्ययन करके उसकी पूर्ण जानकारी प्राप्त करता है। और उससे संबंधित तथ्यों को एकत्रित करता है।

(3) समस्या समाधान के उपाय :-

व्यक्ति पहले किये हुए प्रयासों की

सहायता से समस्या का समाधान करने के लिए विभिन्न उपायों पर विचार करता है।

(5) एक उपाय का चुनाव :-

व्यक्ति समस्या का समाधान करने के लिए सब उपायों के औचित्य और अनौचित्य पर पूर्ण रूप से विचार करने के बाद उनमें से एक का चयन कर लेता है।

(6) उपाय का प्रयोग :-

व्यक्ति अपने निर्णय के अनुसार समस्या का समाधान करने के लिए उपाय का प्रयोग करता है।

तर्क के प्रकार

(1) आगमन तर्क

इस तर्क में व्यक्ति अपने अनुभवों या अपने द्वारा संकलित तथ्यों के आधार पर किसी सामान्य नियम या सिद्धांत का निरूपण करता है। इसमें वह तीन स्तरों से होकर गुजरता है। निरीक्षण, परीक्षण और सामान्यीकरण। उदाहरणार्थ : जब मौं हार जीत पर बच्चों को रोता हुआ पाती है, तब वह अपने रोने के कारणों की खोज करके इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि बच्चे भूख के कारण रो रहे हैं। इस प्रकार इस विधि में विशिष्ट सत्य से सामान्य सत्य की ओर अग्रसर हो

155 है। अतः हम 'आर्मिया' के शब्दों में कह सकते हैं "आगमन विधि खोज और अनुसंधान की विधि है"।

(२) निगमन तर्क

इस तर्क में व्यक्ति दूसरों के अनुभवों, विश्वासों या सिद्धांतों का प्रयोग करके सत्य का परीक्षण करता है। उदाहरणार्थ यदि माँ को इस सिद्धांत में विश्वास है तो वह बच्चे का रोना देखकर तुरंत इस निष्कर्ष पर पहुँच जाती है कि उसे भूख लगी है। और इसलिए उसे दूध पिला देती है। इस प्रकार इस विधि में हम एक सामान्य सिद्धांत को स्वीकार करते हैं और उसे नवीन परिस्थितियों में प्रयोग करके सिद्ध करते हैं। अतः हम 'आर्मिया' के शब्दों में "निगमन विधि प्रयोग और प्रमाण की विधि है"।

तर्क का प्रशिक्षण

शिक्षक पर बालकों की तर्क शक्ति का विकास करने का गंभीर उत्तरदायित्व है। वह ऐसा अग्रांकित विधियों का प्रयोग करके कर सकता है।

(1) आगमन विधि तार्किक चिंतन के विकास में योग देती है। अतः अध्यापक को अपने शिक्षण में इस विधि का प्रयोग करना चाहिए।

(२) वाद-विवाद, विचार-विमर्श, आक्षेप-प्रतिक्षेप

156 आदि तार्किक चिंतन को प्रोत्साहित करते हैं। अतः शिक्षक को इनका समुचित आयोजन करना चाहिए।

(3) खोज, प्रयोग और अनुसंधान का तार्किक चिंतन में महत्वपूर्ण स्थान है। अतः शिक्षक को बालकों को इस प्रकार के कार्य करने के अवसर देने चाहिए।

(5) एकाग्रता, आत्मनिर्भरता, आदि गुणों के अभाव में तार्किक चिंतन की कल्पना नहीं की जा सकती है। अतः शिक्षक को बालकों में इन गुणों का विकास करना चाहिए।

(5) निरीक्षण, परीक्षण और स्वयं क्रिया से तार्किक चिंतन के प्रयोग का उत्तम अवसर मिलता है। अतः शिक्षक को बालकों के लिए इनसे संबंधित क्रियाओं की व्यवस्था करनी चाहिए।

(6) पूर्वाग्रह, पूर्व धारणा, तार्किक चिंतन में बाधा उपस्थित करते हैं। अतः शिक्षक को बालकों को इनके दुष्परिणामों से भली भाँति अवगत करा देना चाहिए।

(7) किसी समस्या का समाधान करने की विभिन्न विधियों पर विचार करने से तार्किक चिंतन को बल मिलता है। अतः शिक्षक को बालकों को विभिन्न

15 प्रकार की समस्याओं का समाधान खोजना " मे उपयोग प्रतीत करना चाहिए।

शिक्षा में सांख्यिकी (Statistics in Education)

प्र
सांख्यिकी से आप क्या समझते है? इसकी परिभाषा कैसे दी जा सकती है? समझाइये?

शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में सांख्यिकी निरंतर लोकप्रिय हो रही है। आधुनिक समय में कोई भी विषय सांख्यिकी के ज्ञान के अभाव में अधूरा है। शिक्षा में भी सांख्यिकी का प्रयोग निरंतर बढता जा रहा है। शिक्षा जगत की अनेक समस्याएँ है। उनके समाधान के लिये शिक्षा विद्व सांख्यिकी का प्रयोग करते है।

सांख्यिकी का अर्थ (Meaning of Statistics)

सांख्यिकी शब्द को अंग्रेजी में Statistics कहते है। यह शब्द लैटिन शब्द Status, German शब्द Statistik और Italian शब्द Statista से निकाला माना जाता है।

सांख्यिकी की परिभाषा

बाउले - " सांख्यिकी अनुसंधान की किसी विभाग से संबंधित तथ्यों का संख्यात्मक विवरण है। इन्हें एक दूसरे के संबंध में रखा जा सकता है।

156 बालिस – "सांख्यिकी विधियों का वह समूह है जिसके द्वारा अनिश्चितता के मध्य में बुद्धिमानी से निर्णय किया जा सकता है।

मार्टिन – "सांख्यिकी वह विज्ञान है जिसका संबंध सांख्यिकीय तथ्यों के एकत्रीकरण, वर्गीकरण, सारणीकरण तथा संकलन से है जिससे इनका स्पष्टीकरण किया जा सके और घटनाओं की तुलना और वर्णन किया जा सके।

शिक्षा में सांख्यिकी का महत्व

शिक्षा जगत में सांख्यिकी का विशेष महत्व है। छात्रों की प्रगति की जानकारी करने के लिए जिन परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है, उनके संख्याओं (Raw scores) का प्रयोग किया जाता है। छात्रों की किसी विषय में कितनी जानकारी है, कि इसको संख्याओं द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसी प्रकार किसी विषय में बालक बालिकाओं का एक वर्ग में जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह पर्याप्त है या नहीं इसको व्यक्त करने के लिए हम संख्याओं का सहारा लेते हैं।

उदाहरण स्वरूप :- किसी बालक या बालिका के गणित विषय के ज्ञान को व्यक्त करने के लिए हम कह सकते हैं कि उसने 100 में से 85 अंक प्राप्त किए हैं। यदि किसी बालक ने वार्षिक परीक्षा में 100 में से

33 या उससे अधिक अंक प्राप्त किये है तो उसके ज्ञान को पर्याप्त समझकर उसे उत्तीर्ण कर दिया जाता है। इसके विपरीत यदि कोई बालक व बालिका 100 में से 33 अंक भी नहीं प्राप्त करता तो इसके ज्ञान को अपर्याप्त समझकर उसे अनुत्तीर्ण कर दिया जाता है।

बालक बालिकाओं की शिक्षा संबन्धी प्रगति की जाँच करने के लिए ही नहीं वरन् उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने के लिए भी संख्याओं तथा आँकड़ों का प्रयोग किया जाता है। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि छात्र छात्राओं की बुद्धि को मापने के लिए जो अनेक बुद्धिमापक परीक्षाएँ प्रचलित है उनके आधार पर प्रत्येक विद्यार्थी की बुद्धि लब्धि निर्धारित की जाती है। इस बुद्धिलब्धि को भी संख्याओं द्वारा व्यक्त किया जाता है।

मापन तथा मूल्यांकन में सांख्यिकी का महत्व इस प्रकार है।

(1) छात्रों के लिए महत्व

छात्रों के लिए सांख्यिकी की विशेष उपयोगिता है। आधुनिक समय में अनेक छात्र छात्राएँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, परन्तु सभी छात्रों का ~~अधिक स्तर~~ बौद्धिक स्तर समान नहीं होता है। उनकी आवश्यकताएँ, रुचियाँ तथा क्षमताएँ भिन्न होती है। इसी कारण शिक्षक के लिए

यह आवश्यक होता है कि वह छात्रों की क्षमताओं और रुचियों की जानकारी करें। इन तथ्यों की जानकारी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर की जाती है। सांख्यिकी द्वारा इन परीक्षणों का विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार सांख्यिकी छात्रों को विशेष लाभ पहुँचाती है। इस प्रकार के विश्लेषण के आधार पर छात्रों की रुचियों तथा अभिरुचियों की जानकारी की जाती है।

(2) शिक्षक के लिए महत्व

शिक्षक के लिए सांख्यिकी की विशेष उपयोगिता होती है। सांख्यिकी का ज्ञान शिक्षक की व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि करता है। सांख्यिकी से शिक्षक को छात्रों की प्रगति की जानकारी हो जाती है। परीक्षण के निष्कर्ष का उपयोग सांख्यिकी द्वारा ही होता है। "सांख्यिकी शिक्षक के व्यावसायिक प्रशिक्षण का अनिवार्य अंग है।"

(3) मूल्यांकन में महत्व

सांख्यिकी का प्रयोग शिक्षा में मापन तथा मूल्यांकन में किया जाता है। कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिक परीक्षण इस प्रकार हैं। (1) बुद्धि परीक्षण

(२) निबन्धी परीक्षण (३) वैज्ञानिक परीक्षण।

(५) मनोविज्ञान में उपयोगिता

सांख्यिकी का सफल प्रयोग शिक्षा मनोविज्ञान में किया जाता है। मनोविज्ञान सांख्यिकी के अभाव में अधूरा रहता है। सांख्यिकी ने ही मनोविज्ञान को पूर्णता प्रदान की है। यही कारण है कि ~~मनो~~विज्ञान के छात्रों को सांख्यिकी ~~अध्य~~ अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है।

(६) शैक्षिक तथा अनुसंधान कार्य में महत्व

आधुनिक समय में सभी अनुसंधान कार्यों में मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता है। आजकल सांख्यिकी शिक्षा के उद्देश्यों तथा अनुसंधान में सांख्यिकी का प्रयोग आवश्यक है। सांख्यिकी की सहायता से परीक्षणों की जाँच की जाती है। सांख्यिकी से अनुसंधान कार्य में उपयोगिता के विषय में जानकारी की जाती है।

(1) संस्कृत का शिक्ष धातु से शिक्षा शब्द निकला।

लैटिन भाषा के Educare अंग्रेजी में Education शब्द निकला

(3) व्यक्ति के सर्वांगीण विकास है. शिक्षा का मतलब

(4) समाज से संपर्क करके से शिक्षा प्राप्त करते है।

(5) शिक्षा समाज का निर्माण करता है।

2/08/06 :- शिक्षा मनोविज्ञान :- बालकों के कार्यों का अध्ययन

शिक्षा संबंधी समस्याओं का निदान मनोविज्ञान के द्वारा करना

निरीक्षण, तथ्यों का वर्गीकरण, विवेचन, सामान्यीकरण, प्रमाणीकरण

शिक्षा मनोविज्ञान इन सोपानों से चलते रहते है।

मनोविज्ञान का गुण - (1) सार्वभौमिकता (2) वैधता (Validity)

(3) विश्वसनीयता (4) भविष्य कथन

विशेषता :- (1) वैज्ञानिक निरीक्षण पर आधारित है।
(2) सार्वभौमिकता पायी जाती है।
(3) भविष्यवाणी की जा सकती है।

107
३८८
+ ११८

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में आ जाते है।

(1) शिक्षा की विषम परिस्थिति में मानव व्यवहार का अध्ययन

(2) बालक के सर्वांगीण विकास का अध्ययन

(3) सीखने की प्रक्रिया में कल्पना शक्ति, तर्क शक्ति, चिंतन शक्ति आदि का अध्ययन

(4) बालक के विकास पर वंशपरंपरा (वंशक्रम और वातावरण) का अध्ययन

(5) मूल प्रवृत्ति, संवेग, एवं सामान्य रुचियों का अध्ययन

(6) अच्छा आदत निर्माण, चरित्रनिर्माण, आदि

(7) व्यक्तित्व का विकास, इसका मापन व विकास

(8) अचेतन मन पर व्यक्तित्व का अध्ययन करना

(9) मानसिक अस्वास्थ्य को समझना चाहिए इसके कई अध्ययन करना

(10) रुचियों या संवेगों का अध्ययन

(11) विशिष्ट ... बालकों का अध्ययन करना।

शिक्षा के लिए मनोविज्ञान की उपयोगिता।

(1) स्वयं का ज्ञान
(2) बालक विकास का ज्ञान :-
(3) बालक स्वभाव का ज्ञान
(4) " का चरित्र निर्माण
(5) बालकों की रुचि
(6) " की आवश्यकताओं का ज्ञान
(7) " " व्यक्तिगत विभिन्नताओं
(8) " " मूल प्रवृत्तियों का
(9) बालक के सर्वांगीण विकास (10) उचित वातावरण निर्माण
(11) कक्षा की समस्याओं का समाधान
(12) अनुशासन में सहायता
(13) मूल्यांकन की नई विधियों की जानकारी
(14) पाठ्यक्रम निर्माण में सहायक

विकास की अवस्थाएँ

(1) शैशवावस्था जन्म से छह वर्ष | (2) बाल्यावस्था छह से बारह वर्ष | (3) किशोरावस्था बारह – अठारह — जीवन का कठिन काल।

जब से जन्म होता है — तब से विकास होता रहता है।

शैशवावस्था :- (1) दूसरों का मुख देखते हैं।
(2) भूख लगने पर जो वस्तु उसके हाथ में है वह खाने की कोशिश करता है।
(3) छुआ-छूत की भावना इनमें नहीं है।
(4) अपने हाथ की चीज दूसरे को नहीं देते हैं।
(5) कल्पना के लोक में विचरण करते हैं।
(6) बार-बार बताने की रुचि अधिक है।
(7) काम भावना छोटी उम्र पर होगा।

शैशवावस्था

शिशु की हड्डियाँ 270
पहले की दाँत को दूध की दाँत कहते हैं।

---

(1) मानसिक विकास
(2) सामाजिक विकास

पाँच माह में - क्रोध - स्नेह प्रकट करते हैं।
छह माह में - रुदन की आवाज - अपरिचित व्यक्तियों को देखकर
8 माह - - शब्दों का अनुकरण

तीसरे साल में :- दूसरों के साथ खेलते हैं।
└ इसके बाद :- व्यवहार में परिवर्तन हो जाते हैं।
पाँचवे साल में :- सब कुछ जानते हैं।

(IV) संवेगात्मक विकास

बाल्यावस्था

भार
बालक को बालिका से अधिक भार
└ 80-95 Pound:-
बाल्यावस्था के अंत में बालिका का भार बालक से अधिक हो जाता है।

लंबाई

हड्डियाँ मजबूत होने लगती हैं। संख्या - 350
बालिका के स्थाई दाँत बालक से जल्दी निकलती हैं।

हृदय की धड़कन में कमी होती है।

माँसपेशियों का विकास कम होती है।

(1) पूर्व बाल्य काल में आयु ज्यादा होता है।
(2) जिज्ञासा अधिक होती है।
(3)